हिन्दी भाषा का इतिहास

एम. ए. , हिन्दी

Semester-IV, Paper- IV

पाठ के लेखक

डॉ. सूर्य कुमारी. पी.
एम.ए., एम.फिल., पीएच.डी.
हिन्दी विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय
हैदराबाद।

डॉ. एम. मंजुला
एम.ए., एम.फिल., पीएच.डी.
हिन्दी विभाग
रामकृष्ण हिन्दू हाई स्कूल
अमरावती, गुंटूर।

संपादक

डॉ. एम. मंजुला
हिन्दी विभाग
रामकृष्ण हिन्दू हाई स्कूल
अमरावती, गुंटूर।

निर्देशक

डॉ . नागराजु बट्टू
MBA., MHRM., LLM., M.Sc. (Psy).,MA (Soc)., M.Ed., M.Phil., Ph.D
दूरस्थ शिक्षा केंद्र, आचार्या नागार्जुना विश्वविद्यालय
नागार्जुना नगर – 522510
Phone No-0863-2346208, 0863-2346222
0863-2346259 (अध्ययन सामाग्री)
Website : www.anucde.info
E-mail : anucdedirector@gmail.com

एम. ए., हिन्दी

First Edition :2023

© Acharya Nagarjuna University

This book is exclusively prepared for the use of students of M.A. (Hindi) Centre for Distance Education, Acharya Nagarjuna University and this book is meant for limited circulation only.

Published by:

Dr. NAGARAJU BATTU,

Director

Centre for Distance Education

Acharya Nagarjuna University

Printed at:

FOREWORD

Since its establishment in 1976, Acharya Nagarjuna University has been forging ahead in the path of progress and dynamism, offering a variety of courses and research contributions. I am extremely happy that by gaining 'A' grade from the NAAC in the year 2016, Acharya Nagarjuna University is offering educational opportunities at the UG, PG levels apart from research degrees to students from over 443 affiliated colleges spread over the two districts of Guntur and Prakasham.

The University has also started the Centre for Distance Education in 2003-04 with the aim of taking higher education to the door step of all the sectors of the society. The centre will be a great help to those who cannot join in colleges, those who cannot afford the exorbitant fees as regular students, and even to housewives desirous of pursuing higher studies. Acharya Nagarjuna University has started offering B.A., and B. Com courses at the Degree level and M.A., M. Com, M.Sc., M.B.A., and L.L.M., courses at the PG level from the academic year 2003-2004onwards.

To facilitate easier understanding by students studying through the distance mode, these self-instruction materials have been prepared by eminent and experienced teachers. The lessons have been drafted with great care and expertise in the stipulated time by these teachers. Constructive ideas and scholarly suggestions are welcome from students and teachers involved respectively. Such ideas will be incorporated for the greater efficacy of this distance mode of education. For clarification of doubts and feedback, weekly classes and contact classes will be arranged at the UG and PG levels respectively.

It is my aim that students getting higher education through the Centre for Distance Education should improve their qualification, have better employment opportunities and in turn be part of country's progress. It is my fond desire that in the years to come, the Centre for Distance Education will go from strength to strength in the form of new courses and by catering to larger number of people. My congratulations to all the Directors, Academic Coordinators, Editors and Lesson-writers of the Centre who have help edit the seen devours.

Prof. Raja SekharPatteti
Vice-Chancellor
Acharya Nagarjuna University

M.A (Hindi)

Semester-IV, Paper - IV

404HN21: HISTORY OF HINDI LANGUAGE

हिन्दी भाषा का इतिहास

Syllabus

पाठ्यांश

इकाई -1 : **A.** संसार की भाषाओं का ऐतिहासिक (पारिवारिक) वर्गीकरण।

B. हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास -संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश।

C. हिन्दी तथा अन्य भारतीय आर्य भाषाएँ, भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण-ग्रियर्सन तथा चटर्जी के अभिहित।

इकाई -2 : हिन्दी भाषा का स्वरूप तथा हिन्दी की बोलियाँ।

इकाई-3 : हिन्दी कारकों का विकास और इतिहास।

इकाई 4 : हिन्दी के सर्वनामों का विकास और इतिहास।

इकाई 5: भारत की प्राचीन लिपियों- खरोष्ठी और ब्राह्मी, देवनागरी लिपि का उद्भव और विकार।

CONTENT

1.	संसार की भाषाओं का वर्गीकरण	1.1-1.10
2.	भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण	2.1-2.14
3.	हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास	3.1-3.19
4.	हिन्दी भाषा का स्वरूप और हिन्दी की भूमिकाएँ	4.1- 4.11
5.	हिन्दी की बोलियाँ और उपभाषाएँ	5.1- 5.13
6.	हिन्दी के सर्वनाम और कारक	6.1- 6.10
7.	भारत की प्राचीन लिपियाँ	7.1- 7.10

1. संसार की भाषाओं का वर्गीकरण

1.0.उद्देश्य

भाषा भाव अभिव्यक्ति का सक्षम माध्यम है। मानव अभिव्यक्ति में पाँचों प्रकार के ज्ञानेंद्रियों का योगदान रहता है। इन अभिव्यक्तियों को मूल साधन भाषा है। ऐसी के साधन भाषा संसार के विविध प्रांतो में विविध रूपों में पाए जाते हैं। यानि भाषा मानव के भौगोलिक, सांस्कृतिक, सामाजिक अंशों के आधार पर विभाजित किया जाता है। इस इकाई में हम संसार की भाषाओं के बारे में, जान पायेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद हम-

- संसार के विभिन्न भाषाएँ और उनके वर्गीकरण के बारे में,
- भाषा वर्गीकरण के आधारों के बारे में,
- विभिन्न भाषाओं के परिवारों के बारे में जान पायेंगे।

रूपरेखा

1.1. प्रस्तावना

1.2. भाषाओं का वर्गीकरण

1.2.1. आकृति मूलक वर्गीकरण

1.2.2. पारिवारिक वर्गीकरण

1.3. भाषा परिवार वर्गीकरण की उपयोगिता

1.4. सारांश

1.5. बोध प्रश्न

1.6. सहायक ग्रंथ

1.1. प्रस्तावना

संसार के विभिन्न देशों में विभिन्न भाषाएँ बोली जाती है। इन सभी भाषाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए उस भाषा से संबंधित समस्त अंशों को जानने के लिए आधार प्राचीन शिला- लेखों, सिक्कों और हस्तलिखित पुस्तकें आदि। संसार के सभी भाषाओं को हम किसी न किसी परिवार या भाषा विभाग के अंतर्गत रखते हैं। ऐसा रखने के लिए उस भाषा की उत्पत्ति, आकृति, भाकई अंशों को प्रामाणिक रूप में ले सकते हैं। इस इकाई में संसार की विभिन्न भाषाओं का वर्गीकरण के बारे में पढ़ेगे।

1.2. भाषाओं का वर्गीकरण

संसार की समस्त भाषाओं में वर्गीकरण के कई भिन्न-भिन्न आधार दिखाई देते हैं। उनमें केवल दो आधारों पर भाषाओं का वर्गीकरण अत्यधिक मान्य तथा प्रचलित है। एक वर्गीकरण के अन्तर्गत विद्वानों ने विभिन्न भाषाओं की पद रचना था वाक्य रचना को देखकर 'आकृति' के आधार पर संसार की भाषाओं के विभिन्न वर्गों में रखने का प्रयास किया है।

उन्होंने आकृति के आधार पर यह देखने का प्रयास किया है कि जिन भाषाओं की पद-रचना अथवा वाक्य-रचना में समानता दिखाई देती है उन्हें एक वर्ग में रखा जाय। दूसरे वर्गीकरण के अन्तर्गत विद्वानों ने 'परिवार' के आधार पर भाषाओं का वर्गीकरण किया है। इसके लिए विद्वानों का विचार है कि विभिन्न भाषाओं में विद्यमान शब्दावली की समानता पर ध्यान दिया जाना चाहिए। उनके व्याकरण की समता को देखने का प्रयास करना चाहिए तथा उनकी ध्वनियों में विद्यमान पारम्परिक समानता को आधार बनाना चाहिए। ऐसा करने पर जितनी भाषाएँ, शब्दावली की दृष्टि से व्याकरण की दृष्टि से तथा ध्वनियों की दृष्टि से समान जान पड़े, उनको एक वर्ग में रखा जा सकता है और जैसे जितने वर्ग बने उतने ही वर्गों में संसार भर की भाषाओं का वर्गीकरण किया जा सकता है। इस प्रकार विद्वानों ने अभी तक दो प्रकार से ही संसार की भाषाओं के वर्गीकरण अधिक किये है। इसमें से प्रथम वर्गीकरण का मूलाधार वाक्य-रचना, पद रचना एवं रूपाकृति होने के कारण इसे 'आकृति मूलक वर्गीकरण' कहते है और दूसरे वर्गीकरण का मूधाधार, इतिहास या परम्परा होने के कारण उसे 'पारिवारिक वर्गीकरण' कहते हैं। इस प्रकार संसार की भाषाओं के दो वर्गीकरण अधिक प्रसिद्ध है -

1. आकृतिमूलक वर्गीकरण।

2. पारिवारिक वर्गीकरण।

1.2.1. आकृति मूलक वर्गीकरण

इस वर्गीकरण को 'रूपात्मक', 'वाक्यमूलक', 'रूप रचनात्मक' या 'पदात्मक वर्गीकरण' भी कहते हैं। इस वर्गीकरण का मूल आधार वाक्य रचना है। वाक्य रचना में यह देखा जाता है कि वाक्य में प्रयोग शब्द का निर्माण, उत्पत्ती प्रकृति आदि क्यों कि वाक्य का निर्माण शब्दों से ही होता है। ये शब्द भाषा की संरचना करते हैं। इस प्रकार की रचनात्मक एवं पद निर्माण सम्बन्धी बातों को ध्यान में रखकर ही 'आकृति मूलक वर्गीकरण' किया जाता है। विद्वानों ने संसार भर की भाषाओं का रूप-रचना की दृष्टि से अनुशीलन करने के उपरान्त यह निष्कर्ष निकाला है कि संसार के कुछ भाषाएँ ऐसी है कि जिनमें प्रकृति के साथ न तो प्रत्यय का योग है, न विभक्तियाँ जुड़ती है, न अन्य किसी सम्बन्ध तत्व का प्रयोग होता है और न वे समास बहुत है, किन्तु अविकारी एवं अव्यय जैसे शब्दों से निर्मित है और उन्हें 'अयोगात्मक भाषाएँ' कर सकते है। इसके विपरीत संसार की कुछ भाषाएँ ऐसी है जिनके वाक्यों का निर्माण या तो समास बहुत शब्दों से होता है या प्रत्यय के योग से निर्मित शब्दों में होता है। अथवा जिसके शब्द विभक्तियों के योग से बने हैं। अतएव ये सभी भाषाएँ 'योगात्मक' कहलाती है। इस दृष्टि से संसार की संपूर्ण भाषाओं को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है -अयोगात्मक भाषाएँ और योगात्मक भाषाएँ। योगात्मक भाषाओं में से कुछ ऐसी भाषाएँ मिलती है जो 'प्रश्लिष्ट' है अर्थात जिसमें प्रकृति और प्रत्यय इतने मिले जुले रहते हैं कि उनको पृथक करना सर्वथा असम्भव है। ऐसी भाषाओं को 'प्रश्लिष्ट योगात्मक' या 'समास प्रधान' भाषाएँ कहते हैं।

दूसरे संसार की कुछ ऐसी भी भाषाएँ मिलती हैं जिनके शब्दों में प्रकृति तथा प्रत्यय का योग तो रहता है किन्तु वे प्रत्यय अपनी प्रकृति में पूर्ण तथा धुल मिल नहीं पाते अपितु स्पष्ट दिखाई देते रहते हैं। ऐसी भाषाएँ को 'अशिष्ट योगात्मक' या 'प्रत्यय प्रधान' भाषाएँ करते हैं। तीसरे संसार की कुछ ऐसी भी भाषाएँ हैं जिनके वाक्यों में प्रयुक्त शब्दों के अंतर्गत प्रत्यय या विभक्ति का संयोग मिलता है और ये विभक्तियाँ अपनी प्रकृति में ऐसी मिली रहती है कि उनकी सत्ता स्वतंत्र तो दिखाई देती रहती है किन्तु उन विभक्तियों या सम्बन्ध तत्वों को अलग करना सर्वथा दुष्कर प्रतीत होता

है। ऐसी भाषाओं को 'श्लिष्ट योगात्मक' या विभक्ति प्रधान भाषाएँ कहते हैं। इस तरह संसार की सम्पूर्ण भाषाओं को आकृति या रूप रचना के अथवा वाक्य-रचना के आधार पर चार प्रमुख भागों में विभक्त किया गया है—

(अ) अयोगात्मक या व्याप्त प्रधान भाषाएँ।

(आ) प्रश्लिष्ट योगात्मक / समास प्रधान भाषाएँ।

(इ) अश्लिष्ट योगात्मक/ प्रत्यय प्रधान भाषाएँ।

(ई) स्किट योगात्मक / विभक्ति प्रधान भाषाएँ।

(अ) अयोगात्मक या व्याप्त प्रधान भाषाएँ

इस वर्ग के अंतर्गत संसार की वे भाषाएँ आती हैं जिनके वाक्यों में सभी शब्द अविकारी, स्वतन्त्र एवं अव्यय रूप होते हैं। इन शब्दों पर न तो सभी शब्द अविकारी स्वतंत्र एवं अव्यय रूप होते हैं। न तो काल, लिंग या वचन का कोई प्रभाव पड़ता है और न ये कारक-रचना से ही प्रभावित होते हैं अपितु केवल स्थान भेद, निपाल तथा सुर के कारण उनका अर्थ बोध करता है। इस वर्ग में संसार की भाषाओं में से चीनी, तिब्बती, अनामी, बर्मी, स्यामी, सुडानी आदि भाषाएँ आती है। इस वर्ग की चीनी भाषा मुख्यतया स्थान प्रधान है। इस भाषा के वाक्यों में अर्थ का निर्धारण स्थान से होता है।

उदा : नमो - ता -सी
मैं-मारन – तुम — मैं तुम्हें मारता हूँ।

नी ता न्गो
तुम- मारना- मैं — तुम मुझे मारते हो।

यहाँ 'न्गो' क्रिया 'तो' से पहले आता है तो वह कर्ता हो जाता है और 'नी' क्रिया के पश्चात् आने के कारण कर्म हो जाता है। दूसरे शब्द में नी क्रिया 'ता' से पूर्व आने के कारण कर्ता हो गई और 'न्गो' शब्द का अर्थ क्रिया के बाद आने के कारण कर्म हो गया है।

इस तरह चीनी भाषा में प्रत्येक शब्द इस बात पर निर्भर करता है कि वह शब्द वाक्य में किस स्थान पर प्रयुक्त हुआ है। यहाँ सभी शब्द पूर्णतया स्वतंत्र एवं अधिकारी रहते हैं और स्थान -भेद से ही उनके अर्थ बदल जाते हैं। 'निपात' वे शब्द कहलाते हैं जिनकी व्युत्पत्ति व्याकरण से सिद्ध नहीं होती और जो भाषाओं में प्रयुक्त होते रहते हैं। ऐसे शब्दों को रिक्त शब्द भी कहा जाता है। चीनी भाषा में ऐसे निपात पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। इन निपातों के योग से चीनी भाषा में अनेक शब्दों का निर्माण होता है जिनमें वे अपने मनोभावों को व्यक्त करते हैं।

अतः अयोगात्मक भाषाओं में स्थान, निपात एवं सुर का महत्व होता है। परन्तु सम्पूर्ण अयोगात्मक भाषाएं ऐसी नहीं हैं, जिनमें उक्त तीनों बातों का महत्व दिखाई दे। अफ्रीका की सूडान भाषा स्थान- प्रधान है। वर्मा तथा तिब्बती निपात प्रधान है। मणिपुरी तथा स्यामी भाषाएँ सुर प्रधान है, जब कि चीनी भाषा में स्थान और सुर दोनों का प्राधान्य है।

(आ) प्रश्लिष्ट योगात्मक या समान्य प्रधान भाषाएँ

संसार की जिन भाषाओं के वाक्यों के अन्तर्गत प्रयुक्त शब्दों में अर्थ तत्व और सम्बन्ध तत्व इतने घुल मिल जाते हैं कि पृथक दिखाई ही नहीं देते और संश्लिष्ट के कारण उन शब्दों का भेद करना भी सर्वथा कठिन होता है, वे प्रश्लिष्ट योगात्मक या समास प्रधान भाषाएँ होती है। ये दो प्रकार के होते है –

अ) पूर्ण प्रश्लिष्ट या पूर्णतः समास प्रधान भाषाएँ: उत्तरी दक्षिणी अमरीका, ग्रीन लैण्ड आदि की भाषाएँ पूर्ण प्रश्लिष्ट भाषाएँ है। उत्तरी अमेरिका की 'चेरोकी' भाषा में एक वाक्य – 'नाघोलिनिन' का अर्थ है - हमें एक नाव लावो। यह वाक्य तीन शब्दों से बना है-

नतेने = लाना

अमोखल = नाव

निन= हम

आ) अंशतः प्रश्लिष्ट या अंशतः समास प्रधान भाषाएँ : इसके अंतर्गत यूरोप की वास्क, भारत की संस्कृत, गुजराती आदि भाषाएँ आती है। यूरोप की वास्क भाषा में कितने ही ऐसे शब्द मिलते हैं जिनमें क्रिया, संज्ञा, सर्वनाम आदि इस तरह मिल गए हैं कि उनको पृथक करना सर्वथा दुष्कर हैं और एक ही क्रिया से पूरे वाक्य का बोध हो जाता है। संस्कृत में भी ऐसी अनेक क्रथाओं का प्रयोग होता है, जो अंशतः प्रविष्ट होती हैं और जिनसे पूरे वाक्य का बोध हो जाता है।

उदा: गच्छामि = मैं जाता हूँ।

जिगमिकति = वह जाना चाहता है।

इस प्रकार प्रश्लिष्ट या समास प्रधान भाषाओं के अन्तर्गत विभिन्न शब्दों के योग से ऐसे अद्भुत वाक्यों की रचना होती है जिनका विश्लेषण करने पर एक - एक शब्द बहुत लम्बा दिखाई देता है, किन्तु संयोग हो जाने पर उनके अंशों से ही पूरे वाक्य का निर्माण हो जाता है और वे वाक्य अत्यन्त लघु होते हैं।

(इ) अश्लिष्ट योगात्मक या प्रत्यय प्रधान भाषाएँ

इस वर्ग के अंतर्गत वे भाषाएँ आती हैं जिनमें प्रकृति और प्रत्यय (अर्थ तत्व - सम्बन्ध तत्व) का योग होने पर भी दोनों का अस्तित्व स्पष्ट दिखाई देता रहता है और वे प्रत्यय ही व्याकरणिक सम्बन्ध को सूचित किया करते हैं। यद्यपि वे प्रत्यय सर्वांगपूर्ण नहीं होते, तथापि उनका अस्तित्व यत्किंचित रूप में अवश्य दृष्टि गोचर होता रहता है। इन अश्लिष्ट योगात्मक या प्रथम प्रधान भाषाओं को पाँच विभागों में विभाजित किया जाता है-

a) पुरः प्रत्यय संयोगी: इस विभाग के अन्तर्गत वे भाषाएँ आती हैं जिनमें प्रत्ययों का योग प्रकृति से पहले ही होता है और पूर्व में प्रत्यय लगाकर विविध अर्थों का बोध कराया जाती है। अफ्रीका के बन्तू परिवार की काफिर तथा जुलू भाषाएँ पुरः प्रत्यय प्रधान भाषाएँ हैं।

b) पर - प्रत्यय संयोगी इस विभाग के अंतर्गत वे भाषाएँ आती है, जिनमें प्रत्यय का योग प्रकृति के पश्चात् होता है। यूशल, अल्ताई, द्रविड़ आदि परिवारों की भाषाएँ पर प्रत्यय- संयोगी है। उल्ताई परिवार की 'तुर्की' ऐसी ही भाषा है।

जिसमें प्रकृति के बाद प्रत्यय जुड़ने से वचन एवं कारक का पता चलता है। द्रविड़ परिवार की चार प्रमुख भाषाएँ है तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम में भी प्रकृति के बाद ही प्रत्ययों का योग होने पर वचन एवं कारकों का बोध होता है।

(c) मध्य-प्रत्यय संयोगी

इस विभाग के अंतर्गत वे भाषाएँ आती हैं जिनकी प्रकृति में प्रत्ययों का योग मध्य में होता है। भारत में मुण्डा भाषाएँ तथा हिन्द महासागर में स्थित मैडागास्कर की भाषाएँ मध्य प्रत्यय संयोगी है।

(d) ईषत् - प्रत्यय संयोगी

इस विभाग के अन्तर्गत वे भाषाएँ आती हैं जिनमें अयोगात्मक के साथ-साथ प्रत्यय - संयोगात्मकता भी होती है, समाप्य के साथ- साथ विभक्ति का भी पुट मिलता है अथवा, विभवित के साथ-साथ प्रत्यय का भी संयोग दृष्टिगोचर होता है जैसे जापनी और काकेशी भाषाएँ कुछ-कुछ विभवित की ओर भी झुकी हुई है; आफ्रीका के सूडान परिवार की 'हाउसा' भाषा कुछ-कुछ अयोगात्मक है और यूरोप के वास्क परिवार की भाषाओं का झुकाव समास की ओर दिखाई देता है।

(e) सर्व प्रत्यय संयोगी

इस विभाग के अंतर्गत वे भाषाएँ आती है, जिनमें प्रकृति के आदि मध्य और अन्त में सर्वत्र प्रत्ययों का संयोग देखा जाता है। मलयन और मलनेशिया परिवार की भाषाएँ सर्व-प्रत्यय संयोग मानी जाती है।

4. श्लिष्ट योगात्मक या विभक्ति प्रधान भाषाएँ

जिन भाषाओं में व्याकरणिक सम्बन्ध का बोध विभक्ति से होता है। उन्हें शिलष्ट योगात्मक या विभक्ति प्रधान भाषाएँ कहते हैं। इनमें विभक्तियाँ अपनी प्रकृति के साथ इतनी अधिक घुलमिल जाती है कि उनका स्वतंत्र अस्तित्व दिखाई नहीं देता, जब कि प्रत्ययों का अस्तित्व स्पष्ट दिखाई देता रहता है। इन भाषाओं में कभी तो विभक्तियाँ प्रकृति के बाहर की ओर लगा करती है और कभी-कभी वे प्रकृति के अन्दर ही लगकर उसे विकृत बना देती है। इसी दृष्टि से इस वर्ग को दो विभागों में विभाजित किया जाता है -

(क) बहिर्मुखी श्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ

इसको बहिर्मुखी विभक्ति प्रधान भाषाएँ भी करते हैं। भारोपीय परिवार की भाषाएँ इसी विभाग में आती है क्योंकि इस परिवार की भाषाओं में विभक्तियों का योग बाहर से ही होता है। इस परिवार की सुप्रसिद्ध भाषा 'संस्कृत' है जिसमें व्याकरणिक रूपों का निर्माण विभक्तियों को बाद में बाहर से जोड़ने पर ही होता है।

जैसे- रामः - राम ने

रामौ- दो रामों ने

रामाः सभी रामों ने

रामम्- राम को

(b) अन्तमुखी श्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ

इनको अन्तर्मुखी विभक्ति प्रधान भाषाएँ भी कहते है। सभी सामी परिवार की भाषाएँ इसी विभाग के अन्तर्गत आती है। क्योंकि इन भाषाओं की प्रकृति में विभक्तियों का योग, आन्तरिक रूप में होता है। इस परिवार की भाषाओं में प्रायः तीन व्यंजन वाली धातुएँ मिलती है, जिनमें विभक्तियों के आन्तरिक योग से विविध शब्द बन जाते है। उदाहरण अरबी भाषा में -

कतल् – मारना

क़तल- उसने मारा

कुतिल - वह मारा गया

कातिल- मारने वाला

इस तरह संसार के विभिन्न भाषाओं को उनके आकृति मूलक विभाजन करने से चार प्रमुख परिवारों के अंदर रख सकते है। ये परिवार व्याकरणिक अंशों के अनुसार वर्गीकृत किए गए है। आकृति मूलक वर्गीकरण का सम्बन्ध अर्थ से नहीं होता; उसका सम्बन्ध शब्द की केवल बाह्य आकृति या रूप या रचना प्रणाली से होता है।

इसलिए इस वर्गीकरण में उन भाषाओं को एक साथ रखा जाता है जिनके पदों या वाक्यों की रचना का ढंग एक होता है। पद या वाक्य की रचना को ध्यान में रखकर इस वर्गीकरण को पदात्मक या वाक्यात्मक भी कहते हैं। अंग्रेजी में इसे 'Morphobgical' कहते हैं।

1.2.2. पारिवारिक वर्गीकरण

विश्व के समस्त भाषाओं में आकृतिमूलक वर्गीकरण के बाद अर्थात व्याकरण और शब्द, वाक्य रचना के अनुसार किए गए वर्गीकरण के बाद अब परिवार के अनुसार यानि भौगोलिक समानताएँ, अर्थ की समानताएँ, शब्दानुरूपता, ध्वनि साम्य आदि को दृष्टि में रखकर संसार की भाषाओं को जो वर्गीकृत किया गया हैं उनके बारे में चर्चा करेंगे। भाषाओं के वर्गीकरण में पारिवारिक वर्गीकरण के आधार इस प्रकार है-

- **भौगोलिक समीपता**

पारिवारिक सम्बन्ध के लिए प्रायः स्थानिक समीपता को लेते हैं। आस-पास के स्थानों में बोलने वाली भाषाएँ प्रायः एकही परिवार के होते हैं। उसमें क्षेत्र समीपता के कारण भाषाओं में समानता दिखाई देती है। इसके अनुसार संसार की भाषाएँ आफ्रिका, यूरेशिया, प्रशांत- महासागर और अमरीका के खंडों में विभाजित की गयी हैं। लेकिन यह कुछ अवैधानिक भी कहते है क्योंकि दो सामीपस्थ भाषाएँ एक-दूसरे से भिन्न हो सकती हैं और दो दूरस्थ भाषाएँ परस्पर समान। उदाहरण के लिए भारत में ही ऐसी भाषाएँ है जो समीप होते हुए भी भिन्न परिवार की भाषाएँ है।

- **शब्दानुरूपता**

जिन भाषाओं में समान शब्द मिलते हैं उन्हें एक परिवार में रखने है। समान रूप वाले शब्द समान्यतः एक ही समाज, जाति अथवा परिवार के व्यक्तियों द्वारा शब्दों के समान रूप से व्यवहुत होते रहने से समानता आ जाती है। इस आधार में सबसे बड़ी कठिनाई यह होती है कि अन्य भाषाओं से आये हुए शब्द भाषा के विकसित होते रहने से मूल

शब्दों में ऐसे धुलमिल की जाते हैं कि उनको पहचान कर अलग करना कठिन हो जाता है। इस कठिनाई का समाधान एक सीमा तक अर्थगत समानता है। क्योंकि एक परिवार की भाषाओं के अनेक शब्द अर्थ की दृष्टि से समान होते हैं और ऐसे शब्द उन्हें एक परिवार से सम्बन्धित करते है। इसलिए अर्थ परक समानता भी एक महत्वपूर्ण आधार है।

- **ध्वनि साम्य**

ध्वनि साम्य को भी भाषा परिवारों के विभाजन का एक आधार माना गया है। प्रत्येक भाषा की ध्वनि अलग होती है। उच्चारण नियम भी अलग होता है। यही कारण है कि वह अन्य भाषाओं की ध्वनियों से जल्दी प्रभावित नहीं होती है। कुछ शब्द ध्वनि नियम के अनुसार निकटतम ध्वनियों के वरूप में बदल लेती है।

- **व्याकरणगत समानता**

भाषा के वर्गीकरण का व्याकरणिक आधार सबसे अधिक प्रामाणिक होता है। क्योंकि भाषा का अनुशासन करने के कारण यह जल्दी बदलता नहीं है। व्याकरण की समानता के अंतर्गत धातु, धातु में प्रत्यय लगाकर शब्द निर्माण, शब्दों से पदों की रचना प्रक्रिया तथा वाक्यों में पद विन्यास के नियम आदि की समानता का निर्धारण आवश्यक है।

इस प्रकार स्थानिक समीपता, शब्द - साम्य, ध्वनिसाम्य तथा व्याकरण साम्य भाषाओं के पारिवारिक वर्गीकरण का आधार है। इन में व्याकरण साम्य का महत्व अधिक है। स्थानिक समीपता का महत्व सबसे कम है। अध्ययन की सुविधा के लिए विश्व के भाषा परिवारों को चार खण्डों में विभाजित किया गया है।

(अ) यूरेशिया खंड

(आ) अफ्रीका खंड

(इ) प्रशांत महासागरीय खंड

(ई) अमेरिकी खंड

(अ) यूरेशिया खंड (यूरोप-एशिया) इस के भाषा परिवार के इस प्रकार है -

1. भारत - यूरोपीय
2. द्रविड़ परिवार
3. काकेशी परिवार
4. बुरुशस्की
5. उराल अल्लाई परिवार
6. चीनी परिवार
7. जापानी - कोरियाई
8. अत्युतरी (हाइपरबोरी) परिवार
9. बास्क परिवार

10. सामी हामी परिवार

1. भारोपीय परिवार

भारोपीय भाषा परिवार यूरोप एवं एशिया के ज्यादातर भाषाओं का प्रतिनिधित्व करता है। इस परिवार के अन्तर्गत भारतीय उप द्वीप और यूरोप महाद्वीप की भाषाएँ सम्मिलित हैं। इस परिवार का नाम कुछ विद्वानों ने इण्डो - जर्मनिक रखा तो कुछ विद्वानों ने इंडो- हिट्टाइट नाम को उपयुक्त माना है। कुछ लोग इसे आर्य परिवार भी माना। इस परिवार की भाषाएँ एशिया में भारत, बांग्लादेश, श्रीलंका, पाकिस्तान, अफगनिस्तान, ईरान तथा यूरोप में, रूस, रूमानिया, फ्रांस, पुर्तगाल, स्पेशन, इंग्लैण्ड, जर्मन आदि में और अमेरिका, कनाड़ा, आफ्रीका और ऑस्ट्रेलिया के अनेक भागों में भी बोली जाती है। इस परिवार की भाषाएँ 'श्लिष्ट योगात्मक' भाषाएँ है। इस परिवार में प्रकृति - प्रत्यय योग बहिर्मुख होता है। इनमें उपसर्ग या पूर्व विभक्तियों का पर्याप्त प्रयोग होता है, इस परिवार में समास रचना ज्यादा होता है।

2. द्रविड़ परिवार

द्रविड़ परिवार की भाषाएँ अत्यन्त समृद्ध भाषाएँ हैं। विश्व में इनको बोलने वालों की संख्या ज्यादा है। इनमें साहित्य भी समृद्ध रूप में प्राप्त होता है। इन सभी भाषाओं पर संस्कृत का प्रभाव रहता है। यह परिवार दक्षिणी भारत, उत्तरी लंका, लक्ष्यद्वीप, बलूचिस्तान, मध्यप्रदेश, बिहार तथा उडिसा में प्रयुक्त होते हैं। इस परिवार की मुख्य भाषाएँ तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड, गोंड, ओरॉव, बाहुई आदि है। इस परिवार की भाषाएँ अश्लिष्ट तथा योगात्मक है। मूल शब्द या धातु में प्रत्यय एक के बाद एक दूसरे से जुडने चल जाते हैं।

3. काकेशियन परिवार

यह काकेशस पर्वत के आस पास के भाषाओं का परिवार है। चेचन, जार्जियन, स्वानियन, लेगियन आदि भाषाएँ प्रमुख हैं। ये भाषाएँ अश्लिष्ट योगात्मक भाषाएँ हैं। इनमें उपसर्ग और प्रत्यय दोनों का प्रयोग होता है। उराल

4. अल्लाई परिवार

यह दूसरा बडी भाषाई परिवार है। इस परिवार का प्रांत युगल और अल्ताई पर्वत के मध्य से सोवियत संघ तक माना जाता है। व्याकरणिक आधार पर खुराल और अल्ताई दोनों एक है परंतु ध्वनियाँ और शब्द समूह अलग है। ये सभी भाषाएँ अश्लिष्ट अन्तः योगात्मक है। इन भाषाओं में मूल धातु में प्रत्ययों को जोड़ा जाता है।

चीनी परिवार: इसे एकाक्षरी परिवार भी कहा जाता है। इस भाषा का क्षेत्र चीन, वर्मा आदि है। इस परिवार में लगभग 30 भाषाएँ मिलते है। ये भाषाएँ अयोगात्मक है। इनमें पदक्रम से अर्थ निर्णय होता है। इनमें अनुनासिक ध्वनियाँ अधिक पाई जाती है।

5. बरुरास्त्री परिवार : इसका क्षेत्र भारत के उत्तर पश्चिम कश्मीर में पसरा हुआ है।

जपनी - कोरियाई परिवार: इस परिवार में जपान और कोरियाई द्वीप पर बोली जाने वाली भाषाएँ मिलते हैं। इस में दो ही भाषाएँ प्रमुख है - कोरियन और जापान। इस परिवार की भाषाएँ अश्लिष्ट योगात्मक है। शब्दों का निर्माण अनेकाक्षरों से होता है। शब्द के समस्त वर्णों पर सामान्यतया समान बल पड़ता है।

बास्क परिवार: फ्रांस और स्पेइन की सीमा पर मुख्य रूप से परिनीज पर्वत के पश्चिम भाग में इस परिवार के भाषा को बोला जाता है। इस परिवार में मुख्य रूप से 7 बोलियाँ प्रचलित है।

2. आफ्रिका खण्ड: इस खण्ड में मुख्यतः चार भाषा परिवार है। थे भाषाएँ सामान्यतः भूमध्य रेखा के उत्तर में पूर्व से पश्चिम तक बोली जाती है। इनमें प्रमुख भाषाएँ वुले, मन-फू, कनेरी, निलोहिक एवं हौसा इत्यादि।

बाँटू परिवार: इस परिवार की भाषाएँ आमतौर पर भूमध्य रेखा के दक्षिण में दक्षिण आफ्रिका के अधिकांश भागों में एवं जंजीबार द्वीप पर बोली जाती है। इस परिवार में लगभग 150 भाषाएँ पायी जाती है। काफिर, स्वाहील, जुलू कांगो, उम्बुन्द्ध आदि प्रमुख भाषाएँ है। ये भाषाएँ बड़ी श्रुति मधुर होती है। शब्द स्वरांत होते हैं। लिंग का विचार नहीं होता है ।

होते न्तात - बुशमैनी परिवार: इस परिवार की भाषाएँ दक्षिण - पश्चिम अफ्रिका में आरंज नदी से नागामी झील तक बोली जाती है। इन भाषाओं के ध्वनियों में अंतः स्फोटालक ध्वनियों का प्रयोग होता है। इन ध्वनियों का आधार संजीव - निर्जीव स्थिति है।

सूडान परिवार: यह अफ्रीका में भूमध्य रेखा के उत्तर हेमेटिक क्षेत्र से दक्षिण-पूर्व से पश्चिम तक एक रेखा की तरह वस्तृत है। इसकी मुख्य भाषाएँ हौसा, सोहंगाई इवे, बांटू न्यूनियन, यरुना, असामी आदि है। इस परिवार की भाषाओं में विभक्तियों का प्रयोग नहीं होता है। बहुवचन का प्रयोग है कम रहता है। वाक्य लघु एवं सरल होते हैं।

हेमेटिक सेमेटिक परिवार : इसे कुछ विद्वान भारोपीय परिवार के अंतर्गत रखते हैं। क्यों कि यह परिवार उत्तरी अफ्रिका तथा मासके पश्चिमी एशिया में फैन हैं। ये दोनों श्लिष्ट योगात्मक और अन्तर्मुखी है। इनमें पूर्व, मध्य, पर विभक्तियाँ प्रयुक्त होती है। लिंग स्त्री-पुरुष पर आधारित न होकर अन्य कारणों पर निर्भर होते हैं।

इ) प्रशांत महासागरीय खंड: इस परिवार की भाषाएँ भूमध्य रेखा के उत्तर में पूर्व से पश्चिम तक बोली जाती है। वुले, मन-फू, कनेरी, निलोरिक, हौसा आदि इस खंड के कुछ मुख्य भाषाएँ हैं। इस खंड के कुछ भाषाई परिवार इस प्रकार है-

पावुई परिवार: यह परिवार मलाया, और पॉलिनेशिया के मध्य न्यूगिनी और सोलोमन द्वीपसमूह तक फैला है। मफोर इस परिवार की प्रमुख भाषाएँ है। ये भाषाएँ अश्लिष्ट योगात्मक है। इसके आदि और अन्त में शब्द जोड़कर पद बनाए जाते हैं।

ऑस्ट्रेलिभाई परिवार: संपूर्ण ऑस्ट्रेलिया महाद्वीप एवं तस्थानिया में इस परिवार की भाषाएं बोली जाती है। इसकी प्रमुख भाषाएँ मैक्वारी तथा कामिलकोई है। ये भाषाएँ अश्लिष्ट योगात्मक है। इन भाषाओं में क्रियारूप जहिल होती है । काल में भी अनेक भेद पाए जाते हैं।

ई) अमेरिकी खंड: इस खंड के अंतर्गत एक ही परिवार आता है। अमेरिकी परिवार। इस में सम्पूर्ण उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका आ जाता है। इस परिवार में अंग्रेजी, स्पैनिश, पुर्तगली, फ्रांसीसी, जर्मन तथा इटैलियन सम्मिलित है। ये भाषाएँ प्रश्लिष्ट योगात्मक हैं। अर्थात शब्दों के अंश मिलकर वाक्य बन जाते हैं।

1.3. भाषाओं के वर्गीकरण में उपयोगिता

संसार की भाषाओं के वर्गीकरण से हम विविध भाषाओं के बारे में जान पायेंगे। भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन कर सकेंगे। भाषाओं के बीच समानताएँ और असमानताओं के बारे में जान पायेंगे। संसार में कुछ ऐसी भाषाएँ है जो आज लुप्त हो गई। उनके मूल और उनसे संबद्ध भाषाओं के बारे में जान पायेंगे। पारिवारिक वर्गीकरण संसार में दूर- दूर बिखरे हुए जाति सब के बीच एकता सिद्ध हुआ है और इसका कारण ये है कि उन सभी दूर-दूर बिखरे हुए जाति के भाषा में समानता होता है। पारिवारिक वर्गीकरण द्वारा अनेक जातियों के लुप्त इतिहास का ज्ञान होता है। प्राचीन इतिहास का भी अनुमान लगाया जाता है। इस अध्ययन से विश्वबंधुत्व की भावना विकसित होती है।

1.4. सारांश

संसार की भाषाओं को दो अंशों के आधार पर वर्गीकृत किया गया है। आकृतिमूलक वर्गीकरण और पारिवारिक वर्गीकरण। आकृतिमूलक वर्गीकरण का आधार भाषाएँ है। शब्द, वाक्य, रूप आदि के आधार पर वर्गीकरण किया गया है। इस वर्गीकरण के आधार पर विश्व की समस्त भाषाओं को अयोगात्मक तथा योगात्मक दो वर्गों में विभक्त किया गया। यह तो भाषा की सामान्य प्रवृति को जानने के लिए उपयुक्त होता है, लेकिन ऐतिहासिक अंशों को जानने के लिए, इतिहास को जानने के लिए पारिवारिक वर्गीकरण की आवश्यकता है। भाषाओं के पारिवारिक वर्गीकरण में भाषाओं को चार खण्डों में विभाजित किया गया है। यूरोपीय खंड, अफ्रीका खण्ड, प्रशांत महासागरी खण्ड और अमेरिकी खण्ड। इस तरह विश्व भाषाओं का वर्गीकरण करने से भाषाओं की समानताएँ, असमानताएँ जान पायेंगे। विश्व के सभी भाषाओं की विशेषताओं को जान पायेंगे।

1.5. बोध प्रश्न

1. विश्व की भाषाओं के वर्गीकरण के बारे में विस्तृत चर्चा कीजिए।

2. आकृतिमूलक वर्गीकरण के बारे में लिखिए।

3. भाषाओं के पारिवारिक वर्गीकरण के बारे में चर्चा कीजिए।

4. द्रविड़ भाषा परिवार के बारे में, उसके क्षेत्र, भाषाओं पर प्रकाश डालिए।

1.6. सहायक ग्रंथ

1. भाषा विज्ञान की भूमिका -डॉ. भोलानाथ तिवारी।

2. भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र- डॉ. कपिलदेव द्विवेदी डालिए।

3. आधुनिक भाषा विज्ञान के सिद्धांत - रामकिशारे शर्मा।

डॉ. एम. मंजुला

2. भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण

2.0. उद्देश्य

पिछले इकाई में हम विश्व की भाषाओं का वर्गीकरण, मुख्य भाषाएँ और उनकी विशेषताओं के बारे में जान चुके है। इस इकाई में भारतीय आर्थ भाषाओं के बारे में जान पायेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद-

-भारतीय आर्य भाषाओं के बारे में,

-आर्य भाषाओं के वर्गीकरण के बारे में,

-आर्य भाषाओं के इतिहास, काल विभाजन के बारे में जान पायेंगे।

रूपरेखा

2.1. प्रस्तावना

2.2. भारतीय आर्य भाषाओं का इतिहास

2.2.1. प्राचीन भारतीय आर्य भाषा काल

2.2.2. मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा काल

2.2.3. आधुनिक भारतीय आर्य भाषा काल

2.3. आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण

2.3.1. जार्ज ग्रियर्सन का वर्गीकरण

2.3.2. डॉ. सुनीता कुमार चटर्जी का वर्गीकरण

2.3.3. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा का वर्गीकरण

2.4. सारांश

2.5. बोध प्रश्न

2.6. सहायक ग्रंथ

2.1. प्रस्तावना

आधुनिक आर्य भाषाओं का जन्म 1000 ई. के आसपास हो चुका था। पाश्चात सौ-डेढ़ सौ वर्ष बाद उन भाषाओं में साहित्य सृजन प्रारंभ हुआ था। भारत में आर्यों का आगमन पहले सप्त सिंधु जिसे हम आधुनिक पंजाब के नाम से जानते हैं, देश में आधिपत्य स्थापित कर लिया। यहाँ से धीरे-धीरे पूर्व की ओर बढ़ते गए और पूरे देश के अनार्यों को पराजित करके अपना राज्य स्थापित किया। आर्यों का आगमन केवल राजनीतिक सीमा तक न रहकर उनकी भाषा एवं संस्कृति को भी भारत में प्रसार किए थे। कृषि प्रधान अनार्य जाति के लोग आर्य जाति से मिल कर रहने लगे। फलस्वरूप इनके बीच संस्कृतियों और भाषाओं का आदान-प्रदान भी हुआ। इनकी संस्कृति ग्रामीण थी। इन की संस्कृति भारत में फैलने के लिए शताब्दियाँ लग गई। इस काल क्रम में भाषा भी स्थिर नहीं रह सकी, उसके रूप में परिवर्तन

विवर्तन होता गया। कुछ अंश आर्य भाषाओं से की गई तो कुछ अंश द्रविड़ से आए हैं। इस क्रम में भारतीय भाषाओं पर द्रविड़ संस्कृति, जाति-जनजातियों की संस्कृतियों के अलावा समय-समय पर अनेक जातियाँ जैसे शकु, हूण, मंगोल, तुर्क, चीनी, अरब, शान आदि के प्रभाव पड़ा। इन सब से भारतीय भाषाओं के निर्माण और विकास में उनका प्रभाव पड़ा। संसार के सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद की भाषा का विकास ईसा से 2400 वर्ष पूर्व अवश्य हो गया था। इसी आधार पर भारतीय आर्य भाषाओं के इतिहास का काल विभाजित कर सकते है-

1. प्राचीन भारतीय आर्य भाषा काल (2400 ई. पू. से 500ई. पू.)
2. मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा काला (500 ई. पू. से 1000 ई)
3. आधुनिक भारतीय आर्य भाषा काल (1000 ई. से अब तक है)

2.2.1. प्राचीन भारतीय आर्य भाषा काल

इस काल के अन्तर्गत भारतीय आर्य भाषा के दो रूप मिलते हैं - वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत। वैदिक संस्कृत से अभिप्राय, उस भारतीय आर्य भाषा से है जिसका प्राचीनतम रूप 'ऋग्वेद-संहिता' में मिलता है। इसे वैदिकी, छांदस या प्राचीन संस्कृत कहकर भी पुकारा जाता है, ऋक्, यजु, साम और अथर्व नामक चारों वेद, सम्पूर्ण ब्राह्मण ग्रन्थ, सम्पूर्ण आख्यक ग्रन्थ और समस्त उपनिषदों की भाषा 'वैदिक संस्कृत' है। विद्वानों का विचार है कि ऋग्वेद के प्रथम और दशम मण्डलों की भाषा अधिक प्राचीन नहीं है जबकि अन्य सभी मण्डलों की भाषा अति प्राचीन है और वह अवेस्ता के अधिक निकट है। विद्वान यह मानते हैं कि ऋग्वेद के दशम मंडल की रचना उस समय हुई थी जब आर्य कुरु-प्रांचाल प्रदेश की ओर बढ़ गये थे और उन पर मध्य देश के अनार्यों का प्रभाव पड़ने लगा था। मध्यप्रदेश के अनार्यों से प्रभावित भाषा ही सामवेद, यजुर्वेद और अथर्व वेद के साथ-साथ ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों में मिलती है। इनके अतिरिक्त शेष ऋग्वेद में वैदिक संस्कृत का प्राचीन रूप उस समय का है, जिस समय आर्य लोग पंजाब के आसपास हो रहते थे। इस वैदिक संस्कृत का तीसरा रूप वह है जब आर्य लोग मध्य देश में भी आगे बढ़ते हुए भारत के पूर्व में जा बसे थे और उसकी भाषा का प्रभाव पड़ने लगा था।

इस प्रकार जैसे-जैसे आर्य उत्तर से मध्य और पूर्व की ओर बढ़ते गये वैसे-वैसे उनकी वैदिक भाषा पर मध्यदेशीय एवं पूर्वीय भाषाओं का प्रभाव पड़ने लगा और आर्य भी अपनी बात को अधिक सुगम एवं सुबोध बनाने के लिए उनकी ध्वनियों को अपनाने लगे, जिससे वैदिक भाषा में परिवर्तन होते चले गये। वैदिक भाषा में सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह स्वर प्रधान थी, उसकी रूप- रचना में जटिलता एवं विविधता थी, उससे तीन लिंग एवं तीन वचन होते थे वह श्लिष्ट योगात्मक थी और उसमें उपसर्गों का प्रयोग मूल शब्द से हटकर भी होता था। इसी वैदिक भाषा में से लौकिक संस्कृत का विकास हुआ। पाणिनि के समय तक वैदिक भाषा ही साहित्य भाषा थी। इस भाषा का रूप पहले अस्थिर एवं अव्यवस्थित था और इसमें अनेक जनपदीय प्रयोग प्रचलित थे, पाणिनि ने इसे स्थिर एवं व्यवस्थित बनाने का प्रयास किया तथा इसके विविध रूपों में एक रूपता एवं समता लाने के लिए इसे संस्कृत बनाया। यही कारण है कि पाणिनी ने वैदिक भाषा को 'देववाणी' और इस संस्कृत की 'भाषा' कहा है। यह परिष्कृत एवं परिमार्जित होकर ही लौकिक संस्कृत कहलाई। इसमें धार्मिक, दार्शनिक, लौकिक एवं ललित साहित्य की रचना हुई।

वैदिक भाषा में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, किया आदि के अनेक रूप प्रचलित थे, किन्तु लौकिक संस्कृत में उनकी व्यवस्था की गयी और अनेक विकल्पों के स्थान पर एक से रूप बनाने का आग्रह किया गया। साथ ही ऐसे नियम

बनाये गये जिनके द्वारा रूपों में व्याप्त बहुलता एवं विविधता नष्ट हो गई और सभी रूपों में व्याकरणगत एक रूपता स्थापित हो गई। अब सर्वनाम और संज्ञा के रूप स्थिर हो गये, उपसर्ग क्रिया के साथ लगने लगे और तध्दित प्रत्ययों का विकास हो गया। शब्द निर्माण की इतनी अधिक सामर्थ्य होने के कारण ही लौकिक संस्कृत अत्यधिक समृद्ध और उन्नत भाषा हो गयी।

वैदिक और लौकिक संस्कृत में कुछ अन्तर भी पाये जाते हैं। वैदिक भाषा का, लौलिक की तरह मानकीकरण नहीं हुआ था। वैदिक में 'लृ', 'ऋ', 'ॠ' के उचारण सारस्वत होते थे। संस्कृत में आकर ये कदाचित् 'लि', 'रि', 'री' जैसे उच्चरित होने लगी थीं। ऐ, औ के उच्चारण वैदिक में 'आइ', 'आउ' थे, किन्तु लौकिक संस्कृत में ये 'अइ', 'अड' हो गए। लेखन में ळु, ळ्ह अक्षर समाप्त हो गए और इनके स्थान पर ड, ढ प्रयुक्त होने लगे। कई ध्वनियों में उच्चारण-स्थान में अंतर आ गया। वैदिक में संगीतात्मक स्वराघात होता तो लौकिक संस्कृत में बलात्मक स्वराघात विकसित हो गया। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के बलात्मक स्वराघात के बीज यही मिलने लगते है। समासों में सबसे बड़ा अन्तर तो यह आया कि वैदिक में बहुत बड़े-बड़े समाप्त बनाने की प्रवृत्ति नहीं थी, क्योंकि उस भाषा में कृत्रिमता नहीं है, किन्तु संस्कृत में कृत्रिमता के विकास के कारण बड़े-बड़े समासपद भी बने लगे। वैदिक में विजातीय शब्द आए थे किन्तु लौकिक संस्कृत में उनकी संख्या बहुत बढ़ गई। द्रविड़ शब्द - संस्कृत में द्रविड़ से एक हजार से ऊपर शब्द आए है। आस्ट्रिक से भी सौ से अधिक शब्द आए है। यूनानी, रोमन, अरबी, ईरानी तुर्की, चीनी से भी कुछ शब्द संस्कृत में आए है।

मध्यकालीन आर्य भाषा

प्राचीन आर्य भाषा काल में जनभाषा पर आधारित 'वैदिक' एवं 'लौकिक संस्कृत' भाषा के दो रूप साहित्य में प्रयुक्त हुए। पाणिनि द्वारा छांदस भाषा का संस्कार हो जाने पर अर्थात छांदस भाषा के व्याकरण सम्बन्धी नियमों में बंध जाने पर लौकिक संस्कृत अथवा साहित्यिक संस्कृत भाषा का अभ्युदय हुआ। साथ ही साथ अनेक लोक भाषाएँ भी तीव्र गति से प्रचलित होती रहीं। इन लोक भाषा या के मध्यकालीन रूप को 'मध्यकालीन आर्य भाषा' कहा और विद्वानों ने इसे प्राकृत नाम दिया। सम्पूर्ण मध्यकाल में इन प्राकृतों का अत्यधिक जोर रहा। 'प्राकृत' शब्द के सम्बन्ध में दो मत हैं- कुछ लोग इसकी व्युत्पत्ति 'प्राकृ+कृत' अर्थात 'पहले की बनी हुई' या पहले की हुई मानते हैं। दूसरे शब्दों में प्राकृत 'नैसगिक' प्रकृत या 'अकृत्रिस' भाषा है और इसके विपरीत संस्कृत कृत्रिम या संस्कार की हुई भाषा है। सम्पूर्ण मध्यकाल में इन प्राकृतों का अत्याधिक जोर रहा। इस मध्यकालीन आर्य भाषा के विकास को तीन भागों में विभाजित किया जाता है – यथा :

1. प्रथम प्राकृत काल (या) पालि तथा अभिलेखी प्राकृत काल

पालि बौद्ध धर्म की भाषा है। यह काल 500 ई. पूर्ण से ई. सन् के आरम्भ तक माना जाता है। पालि शब्द की व्युत्पत्ति से लेकर विद्वानों में बहुत मत-भेद है। परंतु यह सर्वमान्य है कि बुद्ध ने मागधी भाषा में अपने उपदेश दिये थे। कुछ काल उपरान्त उन्हीं उपदेशों को जिस लोक प्रचलित भाषा में अंकित करके प्रचारित किया गया वही भाषा पालि के नाम से प्रसिद्ध है। कुछ लोगों के मत है कि पालि शब्द पल्लि का विकसित रूप है जिसका अर्थ गाँव है। अर्थात यह 'गाँव की भाषा' है। इसी भाषा में बुद्ध के उपदेशों का प्रचार-प्रसार हुआ था। आज सम्पूर्ण पालि - साहित्य बौद्ध धर्म से ही सम्बन्धित है। आगे चलकर संस्कृत भाषा में भी बौद्ध साहित्य का निर्माण हुआ परन्तु अधिकांश प्राचीन बौद्ध साहित्य भाषा पालि है। कुछ विद्वान मगधी और पालि भाषा को एक ही मानते हैं परन्तु आधुनिक विद्वान इस बात से

सहमत नहीं है क्योंकि मगधी भाषा का क्षेत्र सीमित था और वह प्राचीन मगध प्रदेश में ही बोली जाती थी, जब कि पालि का क्षेत्र व्यापक था और वह अन्तर्प्रातीय भाषा हो गयी थी।

साहित्य: पालि साहित्य का सम्बन्ध प्रमुखतः भगवान बुद्ध से है। कोष, छन्दशास्त्र तथा व्याकरण की भी कुछ पुस्तकें लिखी गई है। जातक, धम्मपद, बुद्धघोष की अट्ठकथा तथा महावंश आदि प्रमुख ग्रंथ है।

बोलियाँ: पालि भाषा पर अन्य बोलियों का भी प्रभाव पड़ा था। यह धारण निर्मूल है कि पालि आदि प्राकृत भाषाओं का जन्म संस्कृत भाषा से हुआ, क्योंकि संस्कृत और प्राकृत भाषा के रूपों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर यही ज्ञात होता हैं कि मध्यकालीन आर्य भाषाओं का विकास संस्कृत से न होकर स्वतंत्र रूप से है। अतएव पालि भाषा भी संस्कृत से विकसित न होकर एक ऐसी मिश्रित भाषा मानी जा सकती है जिसमें मध्य देश की बोलियों की प्रवृत्तियों का प्राधान्य है और कुछ अंश अन्य प्रादेशिक बोलियों के भी है। इस भाषा में गौतम बुद्ध के वचनों का संग्रह 'त्रिपिटक' के नाम से प्रसिद्ध है, जो सुन्तपिटक, विनय पिटक और अभिधम्मपिटक कहलाते है। इसके अनन्तर इन पिटकों पर लिखी हुए टीकाएँ मिलती है जो अनुपिटक कहलाती है। जातक कथाएँ भी पालि भाषा की ही महत्वपूर्ण देन है। इनके अतिरिक्त पाली भाषा में छन्दशास्त्र, व्याकरण तथा कोश ग्रन्थ भी मिलते हैं। इस प्रकार पालि साहित्य का रचना काल 481 ई. पूर्व से आधुनिक युग तक लगभग ढाई हजार वर्षों में फैला हुआ है।

इसी युग में अशोक के शिला लेखों की प्राकृत भाषाएँ भी आती है। इन प्राकृत भाषाओं के कई रूप मिलते है। विद्वान इन लेखों की भाषा को दो, तीन, चार अथवा पाँच बोलियों में विभाजित करते हैं। इन विभाजनों का कारण प्रादेशिक रूपान्तर है। वैसे इन शिला लेखों की भाषा पालि के अधिक निकट है किन्तु इन लेखों पर स्थानीय प्रभाव अधिक पड़ा है। इसका कारण यह है कि अशोक ने स्थानीय लोगों के लिए उनकी बोली में ही थे उपदेश लिखवाये थे। इन लेखों की भाषा के पाँच रूप दिखाई पड़ते हैं- उत्तर पश्चिमी रूप, दक्षिण पश्चिमी रूप, पूर्वी रूप, मध्य देशीय रूप और दक्षिणी रूप। इन भाषाओं की अधिकांश ध्वनियाँ पालि भाषा के ही समान है, परन्तु पालि से अधिक विकसित ध्वनियों का प्रयोग भी इन लेखों में मिलता है।

द्वितीय प्राकृत-काल: यह काल ई. सन् के आरम्भ से लगभग 500 ई. तक माना जाता है। इस काल में जन साधारण की उन भाषाओं का अत्यधिक विकास हुआ जो पहले केवल बोल-चाल में ही प्रचलित थी और जिनका प्रयोग साहित्य रचना के लिए नहीं होता था। पालि भाषा के उपरान्त इन प्राकृत भाषाओं का स्थान-स्थान पर विकास हुआ। 'प्राकृत' शब्द के दो अर्थ हैं। पहले अर्थ में यह 4 वीं सदी ई. पू. से 1000 ई. तक की भाषा है, जिसमें प्रथम प्राकृत में 'पालि' और 'अभिलेखी प्राकृत' है। द्वितीय प्राकृत में भारत एवं भारत के बाहर प्रयुक्त विभिन्न धार्मिक, साहित्यिक और अन्य प्राकृत हैं; तृतीय प्राकृत में अपभ्रंश आती है। प्राकृत के इन सभी रूपों को सर्व प्रथम चार भागों में विभाजित किया जाता है – अश्व घोष के नाटकों की प्राकृत, धम्मपद की प्राकृत, निय प्राकृत और भारतीय प्राकृतें। इन में से प्राकृतों के प्रथम तीन रूप भारत के बाहर मिले है।

प्राकृतों के भेद : प्राकृतों के धर्म, प्रदेश, प्रयोग, लेखन - आधार आदि के आधार पर कई भेद किए गए हैं, जिनमें मुख्य मुख्य शौरसैनी, पैशाची, महाराष्ट्री, अर्धमागधी, मागधी, केकय, टक्क, ब्राचड, खस आदि हैं। अश्व घोष के नाटक की कुछ प्रतिभा मध्य एशिया में मिली है, उनमें जो प्राकृतें मिलती हैं वे संस्कृत से प्रभावित है और वे अशोक के शिलालेखों से भी बहुत कुछ मिलती जुलती है, दूसरे 'धम्मपद' की एक प्रति खोतान में खरोष्ठी लिपि में लिखी हुई मिली है जिसकी प्राकृत भाषा भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश की तत्कालीन प्राकृत से मिलती है। तीसरे निय प्राकृत का

सम्बन्ध चीनी तुर्किस्तान के निय प्रदेश से है। वहाँ पर खरोष्ठी लिपि में लिखित कई लेख मिले हैं, जो निय प्राकृत में हैं और यह भी भारत के पश्चिमी प्रदेश की प्राकृत है, जो इरानी, अफगानिस्तानी और तोखारी से प्रभावित है। चौथी भारतीय प्राकृतों के अन्तर्गत जो प्राकृत भाषाएँ आती है उनमें से महाराष्ट्री, पैशाची, मगधी, शौरसेनी, अर्ध मगधी आदि प्रसिद्ध है। प्राकृत भाषा के सर्वप्रथम वैयाकरण वररुचि ने अपने 'प्राकृत-प्रकाश' नामक व्याकरण में केवल चार प्राकृत भाषाओं का उल्लेख किया है -

महाराष्ट्री, पैशाची, मगधी, शौरसेनी

हेमचन्द ने अपने 'हेम शब्दानुशासन' में इन चार भाषाओं के अतिरिक्त 'चूलिका पैशाची', 'अर्ध मगधी' और अपभ्रंश नामक तीन नवीन प्राकृतों का उल्लेख किया।

इस प्रकार सात प्राकृत भाषाएँ उस समय प्रचलित थी। इनके अतिरिक्त अन्य स्त्रोत से कुछ और प्राकृत भाषाओं के नाम मिलते हैं, जो भारत में प्रचलित थी। विद्वानों का विचार है कि वाल्हीकी, शाकारी, टक्की, शावरी, चाण्डाली आदि तो मगधी के उपभेद है। इनके अलावा और पाँच प्राकृत भाषाओं में साहित्य एवं व्याकरण की विशेषताओं का उल्लेख सर्वाधिक हुआ है। जो इस प्रकार है- शौर सेनी, मगधी, अर्धमागधी, महाराष्ट्री, पैशाची आदि।

विशेषताएँ: शौरसेनी प्राकृत मध्यदेश में शूरसेन प्रदेश के अन्तर्गत प्रचलित थी । आधुनिक मथुरा प्रदेश ही उस समय शूरसेन प्रदेश कहलाता था । इस भाषा में वे सभी ध्वनियाँ विद्यमान है जो पालि भाषा में मिलती हैं । यहां स्वरों में ऐ, ओ और 'ऋ' ध्वनियाँ नहीं है और व्यंजनों में 'श, ष, स' के स्थान पर केवल 'स' ध्वनि ही मिलती है। साथ ही 'न' और 'य' के स्थान पर क्रमशः 'ण' और 'ज' ध्वनियाँ मिलती हैं। मगधी प्राकृत, वर्तमान अवध से लेकर बंगाल तक प्रचलित थी इसी भाषा को महात्मा बुद्ध ने अपने प्रवचनों एवं उपदेशों के लिए चुना था। विद्वानों ने इसे छान्दस् भाषा के विकसित प्राच्या बोली का साहित्यिक एवं पारिमार्जित रूप स्वीकार किया है। मगधी में भी पालि के सभी स्वर विद्यमान है किन्तु व्यंजनों के क्षेत्र में मगधी ने पालि का अनुसरण न करके स्वतन्त्र विकास किया है। इसीलिए यहाँ पर 'स, ष, श' के स्थान पर केवल 'श' ध्वनि मिलती है। 'र' के स्थान पर 'ल', 'जे' के स्थान पर 'ये' और 'क्ष' के स्थान पर 'स्क' आदि मिलती है।

अर्धमगधी का क्षेत्र मगधी और शौरसेनी के बीच में है, अर्थात् यह प्राचीन कोसल के आसपास की भाषा हैं। इसमें मगधी की प्रवृत्तियाँ पर्याप्त मात्रा में मिलती हैं। इसीलिए इसका नाम अर्धमगधी है। इसका प्रयोग प्रमुखतः जैन साहित्य में हुआ है। महावीर स्वामी तथा गौतम बुद्ध की मातृभाषा होने के कारण जैनियों तथा बौद्धों में यही साहित्यिक भाषा के रूप में स्वीकृत हुई। परन्तु बाद में बौद्ध ने पालि भाषा में सम्पूर्ण साहित्य का अनुवाद कर लिया और यह प्राकृत केवल जैनधर्म की भाषा रह गयी। इसमें 'व','श' के स्थान पर प्रायः 'स' का प्रयोग मिलता है। अनेक स्थलों पर दंत्य ध्वनियों का मूर्धन्य हो जाना, च-वर्ग के स्थान पर कहीं-कहीं त- वर्ग मिलता है। इसके गए और पद्य की भाषा के रूपों में अन्तर है।

महाराष्ट्री प्राकृत का विकास महाराष्ट्र प्रदेश में हुआ था। इसे काव्य की कृत्रिम भाषा मानते रहे हैं। महाराष्ट्री प्राकृत साहित्य की दृष्टि से बहुत धनी है। यह काव्य भाषा है। इसमें शौरसेनी प्राकृत के समान ही सभी स्वर एवं ध्वनियाँ मिलती हैं और यहाँ 'ऋ' के स्थान पर 'अ, क, उ' रूप मिलते हैं।

पैशाची प्राकृत, पिशाच प्रदेश में प्रचलित थी परन्तु अभी तक विद्वान यह निर्णय नहीं कर पाये है कि वह पिशाच प्रदेश कौन सा था। हार्नल ने इसे दक्षिण में द्रविड़ परिवारों में प्रयुक्त भाषा कहा है और डॉ. ग्रियर्सन इसे कश्मीर में प्रचलित भाषा का प्राचीन रूप बतलाते हैं। राजशेखर ने इसे 'मरुभूमि टक्क' और भादानक प्रदेश की भाषा कहा है। इस प्राकृत भाषा में गुणाढ्य की 'बढ़ढ़ कहा' मिलती है। इस भाषा में संयुक्त व्यंजनों को 'सस्वर' कर देने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। जैसे स्नान का सनान, भार्या का भारिया, श, स, के स्थान पर कहीं श, और कहीं स मिलता है और 'ण' के स्थान पर 'न' हो जाता है। इस प्रकार द्वितीय प्राकृत काल में आकर संस्कृत के साथ-साथ प्राकृतों का अत्यधिक प्रचार हुआ। नाटकों में निम्न कोटि के पात्र प्राकृत भाषाएँ ही बोलते थे और इन प्राकृत भाषाओं में स्वतंत्र ग्रन्थ भी रचे गये थे जिनमें से जैन धर्म के ग्रन्थ अधिक मात्रा में मिलते हैं।

तृतीय प्राकृत काल : तृतीय प्राकृत काल अपभ्रंष भाषा का काल था। यह काल 500 ई. से 1020 ई तक माना जाता है। इस काल में अपभ्रंष भाषा का विकास हुआ। अपभ्रंष का अर्थ है 'गिरा हुआ','बिगडा हुआ' प्राकृत की तुलना में भी जिस भाषा में ध्वन्यात्मक तथा व्याकरणिक परिवर्तन हो गया था, उसे पंडितों ने 'अपभ्रंश' या 'अवहट्ट' नाम से पुकारा है। अपभ्रंश प्राकृत तथा आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के बीच की कड़ी है। कुछ थोड़े से लोगों की धारणा यह है कि अपभ्रंश प्राकृत और आधुनिक भाषाओं के बीच की कड़ी नहीं है, अपितु वह भी प्रकृत कालीन ही एक क्षेत्रीय भाषा है, या एक प्राकृत है। अपभ्रंश प्राकृत और आधुनिक भाषाओं के बीच की कड़ी है, तथा हर आधुनिक भारतीय आर्य भाषा का जन्म किसी-न-किसी अपभ्रंश से हुआ है। भाषा के अर्थ में अपभ्रंश नाम का प्रयोग छठी सदी से मिलने लगता है।

बोलियाँ : अपभ्रंश तत्कालीन बोलचाल की ही भाषा है। इसके अनेक रूप मिलते हैं। मार्कण्डेय ने प्रथम तो अपभ्रंश के तीन भेद किये है- नागर, ब्राचड़ और उपनागर। परन्तु आगे चलकर अपभ्रंश की बोलियों के 27 भेद स्वीकार किया गये हैं। किन्तु मुख्य अपभ्रंश केकय, टक्क, व्राचड, शौरसेनी, माहाराष्ट्री, अर्थ मगधी, मगधी मानी जा सकती हैं। इन नामों से स्पष्ट है कि प्रत्येक देश की बोली का नाम उस प्रदेश के आधार पर रखा था। लेकिन कुछ समय तक ये बोलियाँ साहित्य रचना में प्रयुक्त नहीं हुई। धीरे-धीरे इन बोलियों को भी साहित्य रचना में स्थान मिलने लगा और हेमचन्द्र के समय तक अपभ्रंश ने भी पूर्ण परिनिष्ठत रूप ग्रहण कर लिया, इसी प्रकार हेमचन्द्र नें 'हेम शब्दानुशासन' में भाषाओं का वर्गीकरण करते हुए 'अपभ्रंश' को भी स्थान दिया। अपभ्रंश की बोलियों के वर्गीकरण के बारे में सभी विद्वान एकमत नहीं है। आधुनिक विद्वानों में डॉ. याकोनी ने अपभ्रंश के चार भेद किये हैं- पूर्वी, पश्चिमी, दक्षिणी और उत्तरी। इसके अतिरिक्त डॉ. टागोरे ने अपभ्रंश का केवल तीन भेद ही स्वीकार किये है- दक्षिणी, पश्चिमी और पूर्वी। इन्होंने 'उत्तरी अपभ्रंश' नामक भेद को स्वीकार नहीं किया है। निष्कर्ष रूप में विद्वानों का विचार है कि उस समय कम से कम सात अपभ्रंश भाषाएँ प्रचलित थी। शौरसेनी, पैशाची, ब्राचड़, श्वास महाराष्ट्री, अर्द्धमगधी और मगधी आदि। इन से ही आधुनिक आर्य भाषाएँ विकसित हुई है।

विशेषताएँ: अपभ्रंश भाषा में वे सभी ध्वनियाँ विद्यमान थी जो प्राकृतों में व्यवहृत होती थीं। इनमें ह्रस्व 'ए' ह्रस्व 'ओ' और 'ड', 'ढ' भी थे। परन्तु इसके लिए लिपि चिह्न न थे। प, श के स्थान पर केवल 'स' का ही प्रयोग होता था। अपभ्रंश उकार बहुत भाषा थी। इसमें 'ऋ' को छोड़कर सभी स्वरों के अनुनासिक रूपों का प्रयोग प्रचलित था। इसमें प्रत्येक शब्द के अन्तिम श्वर के ह्रस्व होने की प्रवृत्ति अत्यधिक बढ़ी-चढ़ी थी। यहाँ आते-आते धातु और नाम दोनों के रूप अत्यन्त कम हो गये थे। इसीलिए यह भाषा बहुत सरल हो गयी थी। धीरे-धीरे इसमें नपुंसकलिंग समाप्त हो

गया और कारकों के रूप भी कम हो गये थे और वचन भी हो ही रह गये। तद्भव शब्दों के साथ-साथ देशज शब्दों की बहुलता हो गयी थी और कतिपय विदेशी शब्द भी प्रयुक्त होने लगे थे। इस प्रकार अपभ्रंश भाषाएँ ईसा की दस वीं शताब्दी तक अच्छी तरह विकसित होकर साहित्य-रचना में प्रयोक्त होने लगी अतएब इन्हें मध्य कालीन आर्य भाषा को अन्तिम अवस्था कह सकते हैं। इस भाषा में 'सन्देश शासक', 'प्राकृत पैंगलम्', 'उक्ति-व्यक्ति प्रकरण', 'वर्ण रत्नाकर', 'चर्यापद', 'कीर्तिलता', ज्ञानेश्वरी आदि ग्रन्थों का निर्माण हुआ है और जिसे कुछ विद्वान 'परवर्ती' अपभ्रंश पुरानी हिन्दी, देशी भाषा, आदि कई नामों से अभिहित करते हैं और कुछ विद्वानों की राय यह है कि इस संक्रान्तिकाल की भाषा को 'अवहट्ठ' करना सर्वथा उपयुक्त है। इस 'अवहट्ठ' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग अब्दुर्रहमान कृत 'सन्देस रासक' में मिलता है जिसकी रचना बारहवीं शताब्दी में हुई थी। तदनन्तर 'प्राकृत पैंगलम' के टीकाकार लक्ष्मीधर ने भी इस ग्रंथ की भाषा को 'अवरुद्ध' कहा है। 'अवहट्ठ भाषा' रूप- रचना एवं प्रकृति की दृष्टि से भी अपभ्रंश के ही अधिक निकट थी।

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का उद्भव विभिन्न क्षेत्रीय अपभ्रंशों से हुआ, जो इस प्रकार है -

अपभ्रंश **आधुनिक भाषाएँ**

शोरसेनी---------- पश्चिमी, हिन्दी, राजस्थानी, पहाडी, गुजरांती

केकच----------लहँदा

टक्क----------पंजाबी

ब्राचड----------सिंधी

महाराष्ट्री---------- मराठी

मांगधी----------बिहारी, बंगाली, उडिया, असमिया

अर्धमागधी----------पूर्वी हिन्दी

लगभग 1000 ई. के आसपास अपभ्रंग के विभिन्न रूपों से उपर्युक्त आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का विकास हुआ। हिन्दी भाषा का उद्भव अपभ्रंश के शौरसेनी, मगधी तथा अर्धमगधी रूप से हुआ। शौरसेनी अपभ्रंश से पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी और गुजराती का विकास हुआ, पैशाची अपभ्रंश से लहंदा और पंजाबी विकसित हुई, ब्रायड़ अपभ्रंश से सिंधी का विकास हुआ, श्वास अपभ्रंश से पहाड़ी भाषाओं की उत्पत्ति हुई, जबकि इन पर राजस्थानी का भी अत्यधिक प्रभाव है, महाराष्ट्रीय अपभ्रंश से मराठी का विकास हुआ, अर्द्धमागधी अपभ्रंश से पूर्वी हिन्दी विकसित हुई और मागधी अपभ्रंश से बिहारी, बंगला, उड़िया और असमिया का विकास हुआ। धीरे-धीरे 12 वीं 13 वीं शताब्दी में इनका प्रयोग साहित्य रचना के लिए भी होने लगा था। इन आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में प्रायः वे ही ध्वनियाँ विद्यमान है, जो प्राकृत एवं अपभ्रंश में मिलती है। परन्तु इसमें नये स्वरों का भी व्यवहार मिलता है। जैसे, हिन्दी में ही बोलियों के अन्तर्गत 17-18 मूल स्वरों का प्रयोग होता है। यहाँ 'ऋ' का प्रयोग तत्सम शब्दों में मिलता है, जबकि इसका उच्चारण उत्तरी भाषा में 'रि' और दक्षिणी भारत में 'रु' किया जाता है। व्यंजनों में स,ष, श तीनों ध्वनियाँ मिलती है, जब कि उच्चारण में 'श' और 'स' का ही प्रयोग होता है। ड़, ढ़ और ड, ढ पृथक-पृथक लिखे जाते हैं।

विदेशी प्रभाव से क, ख, ग, ज, फ आदि नवीन ध्वनियों का भी विकास हो गया है। अन्तिम 'अ' स्वर प्रायः लुप्त हो गया है। प्राकृत और अपभ्रंश के द्वित्व वाले शब्दों में से प्रथम वर्ण यहाँ दीर्घ हो गया है। जैसे 'कम्म' से 'काम' 'अट्ठ' से 'आठ' संस्कृत में कारकों के चौबीस रूप बनते थे प्राकृत में बारह रूप रह गये; अपभ्रंश में छ रूप प्रचलित थे, किन्तु आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में केवल दो रूप मूल और विकृत। क्रिया के रूपों में भी काफी कमी हो गई है। संस्कृत में पहले तीन वचन थे किन्तु अब यह केवल दो ही वचन रह गये हैं और तीन लिंगों के स्थान पर दो लिंग - पुल्लिंग और स्त्री लिंग ही शेष रह गये है। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में तुर्की, अरबी, फारसी, पुर्तगली, अंग्रेजी डच आदि विदेशी भाषाओं के लगभग आठ से दस हजार शब्द और आ गये है। इस प्रकार आर्य भाषाएँ अपेक्षाकृत समृद्ध एवं सम्पन्न हो गयी है।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

1. हिन्दी - हिन्दी का मूल अर्थ 'हिन्द का' हैं। इसी लिए हिन्दी की केन्द्रीय भाषा के लिए नाम का प्रयोग हो रहा है। हिन्दी के अन्तर्गत पाँच उपभाषाएँ या बोली -वर्ग है,

अ) पश्चिमी हिन्दी: खडीबोली, हरियाणी, ब्रज, बुंदेली, कनौजी का समूह।

ओ) पूर्वी हिन्दी : अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी का समूह।

(ई) राजस्थानी : उत्तरी, दक्षिणी, पूर्वी, पश्चिमी राजस्थानी का समूह।

(ई) पहाडी : पश्चिमी तथा मध्यवर्गी पहाडी का समूह।

(उ) बिहारी- भोजपुरी, मगही, मैथिली का समूह।

1961 की जनगणना के अनुसार हिन्दी भाषा तथा उसके विभिन्न रूप बोलनेवालों की संख्या 22 करोड़ 52 लाख थी। इन में पश्चिमी हिन्दी का विकास शौरसेनी प्राकृत से विकसित शौरसेनी अपभ्रंश के मध्यवर्ती रूप से हुआ है। वस्तुतः अपने-अपने समय की राष्ट्रभाषा परिनिष्ठित पालि, परिनिष्ठित अपभ्रंश इसी क्षेत्र की भाषाएँ थीं। उसी परम्परा में आज इस क्षेत्र की हिन्दी राष्ट्रभाषा है। 'पूर्वी हिन्दी' अर्थ मागधी अपभ्रंश से तथा 'राजस्थानी', शौरसेनी अपभ्रंश से विकसित शौरसेनी अपभ्रंश बोली जाती है। इस पर ऐतिहासिक कारणों से राजस्थानी, तथा पश्चिमी हिन्दी का भी प्रभाव पड़ा है। बिहारी का विकास मागधी अपभ्रंश से हुआ है, किन्तु इस पर पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी- तथा शौरसेनी का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा है।

2. सिंधी: सिंधी शब्द का सम्बन्ध संस्कृत 'सिंधु' से है। सिंधु नदी के कारण ही सिंध प्रदेश 'सिंध' कहलाया और वहाँ की भाषा 'सिंधी' कहलाई। सिंधी के अधिकांश बोलने वाले पाकिस्तान के सिंध प्रान्त में हैं, कुछ भारत के मुम्बाई, अजमेर, दिल्ली आदि प्रान्तों में हैं। इसके बोलनेवालों की ठीक संख्या अज्ञात है। सिंधि का विकास ब्राचड अपभ्रंश से हुआ है। सिंधि बोलने वाले मुख्यतः मुसलमान रहे हैं। इसी कारण सिंधी के शब्द - भंडार में आधुनिक भारतीय भाषाओं की तुलना में अरबी-फारसी- तुर्की शब्दों का आधिक्य है। 75 प्रतिशत संस्कृत तद्भव शब्दों की संख्या है। सिंधी भाषा में ग, ज, ड, ब अन्तर्मुखी ध्वनियाँ हैं।

बिचौली, सिराइकी, थरेली, लासी, लाडी तथा कच्छी - सिंधी की मुख्य बोलियाँ है। सिंधी भाषा की लिपि फारसी लिपि के आधार पर बनी है। कुछ लोग देवनागरी लिपि का प्रयोग करते हैं। पहले सिंधी के लिए कहीं गुरुमुखी लिपि का भी प्रयोग होता था, सिंधी का प्राचीन साहित्य तो कम है, किन्तु आधुनिक साहित्य अच्छा है।

3. लहँदा: लहँदा का शाब्दिक अर्थ है 'पश्चिम', 'पश्चिमी' पंजाबी में बोली जाने के कारण यह भाषा 'लहँदा' या 'लेहंदी' कहलाती है। यह मुख्यतः पाकिस्तानी के पंजाब प्रान्त में बोली जाती है। 1961 जनगणना के अनुसार पाकिस्तान में इसके बोलनेवालों की संख्या एक करोड़ बाईस लाख थी। इसका विकास केकय अपभ्रंश से हुआ है। इस भाषा पर व्राचड, पैशाची तथा टक्क का पर्याप्त प्रभाव है। इस के शब्द भण्डार में फारसी - अरबी शब्द अधिक है, क्योंकि इसके बोलने- वाले अधिकांश मुसलमान है। लंडा लिपि पहले प्रयुक्त होती थी, अब फारसी का भी प्रयोग होता है। जटकी, मुल्तानी, जांगली आदि इसकी बोलियाँ हैं। इस भाषा का साहित्य नहीं के बराबर है।

4. पंजाबी: 'पंजाब' फारसी शब्द है जिसका अर्थ- 'पाँच नदियों का देश' मुख्यतः पंजाब में बोली जाने के कारण यह भाषा 'पंजाबी' कहलाती है। पंजाबी के कुछ बोलनेवाले पाकिस्तान में तथा अधिकांश भारत में हैं। 1961 जनगणना के अनुसार भारत में पंजाबियों की संख्या 2 करोड़ 3 लाख थी। इसका विकास टक्क अपभ्रंश से माना जाता है। इस भाषा पर केकय, शौरसेनी तथा पैशाची का भी प्रभाव है। 'लंडा' पंजाबी की पुरानी लिपि थी। देवनागरी की सहायता से सुधार कर वह लिपि 'गुरुमुखी' बनायी गयी है। अब पंजाबी 'गुरुगुखी' लिपि में ही लिखी जाती है। पंजाबी में ध, झ, द, ध, भ का उच्चारण कुछ वह, च्ह ट्ह, ल्हू प्ह, जैसा होता है। माझी, डोगरी, दो आबी, राठी आदि इसकी मुख्य बोलियाँ हैं। पंजाबी में आधुनिक साहित्य पर्याप्त मात्रा में है।

5. गुजराती: 'गुजरात' नाम का सम्बन्ध 'गुर्जर' जाति से है- गुर्जर+त्रा गुज्जा रक्त > गुजरात। गुजरात की भाषा गुजरात है। गुजरात की बोलने वालों की संख्या 1961 गणना के अनुसार 2 करोड़ 3 लाख थी। गुजराती तथा राजस्थानी एक भाषा के दो स्थानीय रूप थे। शौरसेनी प्राकृत तथा शौरसेनी अपभ्रंश का रूप गुजरात में बोला जाता है। उस प्राकृत और अपभ्रंश को 'लोटी प्राकृत' और 'नागर अपभ्रंश' नामों से बुलाया जाता है। गुजराती लिपि देवनागरी से मिलती जुलती है। किन्तु उस में शिरोरेखा नहीं रहती।

गुजराती साहित्य पर्याप्त संपन्न है। काठियावाडी, पट्टनी, सुरती आदि इसकी मुख्य बोलियाँ हैं।

6. मराठी: 'मराठी' महाराष्ट्र की भाषा है और यह शब्द 'महाराष्ट्रीय' से विकसित हुई है। 1961 जन गणना के अनुसार इसके बोलने वालों की संख्या 3 करोड़ 33 लाख थी। इसका विकास महाराष्ट्री अपभ्रंश से हुआ है। इसकी लिपि देवनागरी है, किन्तु कुछ लोग मोड़ी का भी प्रयोग करते हैं।

कोंकणी, नागपुरी, कोष्टी, माहारी आदि मराठी की बोलियाँ हैं।

7. बँगला: संस्कृत शब्द वंग + आल (प्रत्यय) से 'बंगला' बना है और वहाँ की भाषा बंगाली अथवा बंगला है। अब बंगाली पश्चिमी बंगाल (भारत) तथा बंगलादेश में बोली जाती है। 1961 की जनगणना के अनुसार भारत और बंगला देश में कुल 6 कोरोड़ लोग यह भाषा बोलते हैं। इस भाषा का विकास मागधी अपभ्रंश से है। पश्चिमी, दक्षिणी पश्चिमी, उत्तरी, राजबंगशी, पूर्वी आदि बंगला की बोलियाँ हैं। बंगला की अपनी लिपि है। बंगला साहित्य सुसंपन्न है।

8. असमी: असाम की भाषा असमी अथवा असमिया है। 1961 की जन गणना के अनुसार लगभग 3 करोड़ 39 लाख लोग यह भाषा बोलते हैं। इस का सम्बन्ध मागधी अपभ्रंश उत्तरी-पूर्वी रूप से है। इस पर प्राचीन बंगला का प्रभाव बहुत अधिक है। असमी की अपनी लिपि है। विश्नु - पुरिया असमी की मुख्य बोली है। असमी में पर्याप्त साहित्य हैं।

9. उड़िया : उड़िया - उड़िया की भाषा है। इसका सम्बन्ध 'ओड्र' शब्द से है जो मूलतः द्रविड़ शब्द 'ओड' से निकला है। 1961 जन गणना के अनुसार इसके बोलने वालों की संख्या लगभग एक करोड़ 57 लाख है। मागधी अपभ्रंश के दक्षिणी - पूर्वी रूप से उड़िया का विकास हुआ है। यह भाषा बंगाल से बहुत मिलती-जुलती है। इस की लिपि ब्राह्मी की उत्तरी शैली से प्रभावित है। गंजामी, संभलपुरी, भत्री आदि उड़िया की बोलियाँ हैं।

10. सिंहली तथा जिप्सी: सिंहल तथा जिप्सी भाषाएँ आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के अन्तर्गत नहीं आती हैं और वे भाषाएँ भारत में नहीं है। नेपाली भाषा भी इसी के अन्तर्गत है, किन्तु उस भाषा को बोलने वाले भारत में हैं। मुख्य क्षेत्र नेपाल है।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ अपभ्रंश से विकसित हुई है और अब यह निर्विवाद सत्य है कि इनकी उत्पत्ति संस्कृत से हुई है। इन भाषाओं पर संस्कृत का प्रभाव अवश्य है और इनके शब्द भण्डार की पूर्ति संस्कृत के तत्सम शब्दों से पर्याप्त मात्रा में हुई है। इन भाषाओं का वर्गीकरण पर हार्नली, बेबर, जार्ज ग्रियर्सन, धीरेन्द्रनाथ वर्मा, डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी आदि उल्लेखनीय है। परन्तु जार्ज ग्रियर्सन तथा डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी के वर्गीकरण ही सर्वाधिक प्रसिद्ध है।

1. हॉर्नली का वर्गीकरण: इन्होंने आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं को 4 वर्गों में रखा है।

(क) पूर्वी गौडियन : पूर्वी हिन्दी (बंगाल, असमी, उडिया)

(ख) पश्चिमी गौडियन : पश्चिमी हिन्दी (गुजराती, सिंधी, पंजाबी)

(ग) उत्तरी गौडियन : गडवली, नेपाली आदि पहाडी।

(घ) दक्षिणी गौडियन : मराठी।

जार्ज ग्रियर्सन का वर्गीकरण: जॉर्ज ग्रियर्सन ने 1920 ई. में भारतीय भाषाओं का सर्वेक्षण भाग-1 तथा बुलैडिन ऑफ दि स्कूल ऑफ ओरियन्टल स्टडीज, लन्दन अंक -1, भाग-3 में आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है—

1. **बाहरी उपशाखा :** (क) पश्चिमोत्तरी समुदाय - सिन्धी, लहंदा।
   (ख) दक्षिणी समुदाय - मराठी।
   (ग) पूर्वी समुदाय - उड़िया, बंगाली, असमी, बिहारी।
2. मध्यवर्ती उपशाखा : (क) मध्यवर्ती समुदाय - पूर्वी हिन्दी
3. भीतरी उपशाखा: (क) केन्द्रीय समुदाय - पश्चिमी हिन्दी, पंजाबी, गुजराती (भीली, खान देशी) राजस्थानी।
   (ख) पहाड़ि समुदाय - पूर्वी पहाडी, मध्यवर्ती पहाडी, पश्चिमी पहाड़ी।

सन् 1931 में ग्रिथर्सन ने उक्त वर्गीकरण का सम्बोधित रूप इस प्रकार प्रस्तुत किया-

1. मध्यदेशी (पश्चिमी हिन्दी)

2. अन्तवर्ती : (क) पश्चिमी हिन्दी के विशेष धनिष्ठता वाली भाषाएँ - पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, पहाड़ी (पूर्वी, पश्चिमी, मध्यवर्ती)

(ख) बहिरंग से सम्बद्ध - पूर्वी हिन्दी।

3. बहिरंग भाषाएँ : (क) पश्चिमोत्तर समुदाय - लहंदा सिन्धी

(ख) पूर्वी समुदाय - बिहारी, उडिया, बंगला, असमिया।

(ग) दक्षिणी समुदाय – मराठी।

ग्रियर्सन ने भाषाओं का पुन: वर्गीकरण ध्वनि, व्याकरणिक रूप, शब्द समूह आदि को आधार बनाकर इस प्रकार प्रस्तुत किया -

(1) ध्वनि: ग्रियर्सन के वर्गीकरण के ध्वन्यात्मक आधार लगभग 15 हैं। उनमें प्रमुख -

(क) इनके अनुसार 'र' का 'ल' या 'ड' के लिए प्रयोग केवल बाहरी भाषाओं में मिलता है। किन्तु यथार्थत: ऐसी बात नहीं है। अवधी, ब्रज, खाडीबोली आदि में भी यह प्रवृत्ति मिलती है।

जैसे- बर- बल ;

गर-गला ;

जर-जल ;

वीरा- वीडा ;

भीर- भीड ;

(ख) ग्रियर्सन के अनुसार बाहरी भाषाओं में 'द' का परिवर्तन 'ड' में हो जाता है । वस्तुतः यह बात भीतरी में भी मिलता है। जैसे- डीठि दृष्टि ;

ड्योढ़ी- देलही ;

डाभ- दर्भ ;

डंडा - दंड;

डोली - दोलिका ;

डोरा – दोरक।

(ग) ग्रियर्सन का कहना है कि 'म्ब' ध्वनि का विकास बाहरी भाषाओं में 'म' रूप में हुआ है तथा भीतरी में 'ब' रूप में हुआ है। लेकिन इसके विरोधी उदाहरण भी मिलते हैं।

पश्चिमी हिन्दी क्षेत्र में 'जम्बुक' का 'जामुन' या ''निम्ब' का 'नीम' मिलता है।

(घ) ऊष्म ध्वनियों को लेकर ग्रियर्सन का कहना है- भीतरी में इनका उच्चारण अधिक दबाकर किया जाता है और यह 'स' रूप में होता है। बाहरी में यह श, ख, यह रूप में मिलता है।

'स' के 'ह' हो जाने का सम्बन्ध बाहरी और भीतरी भाषाओं में भी पाया जाता है।

संस्कृत - हिन्दी

एक - सप्ततिइकहत्तर

करिष्यति – करिहइ

द्वादश - बारह

(2) व्याकरण या रूप रचना

ग्रियर्सन ने इस प्रसंग में पाँच-छः रूपों का उल्लेख किया। उन में मुख्य इस प्रकार है -

(क) ग्रियर्सन 'ई' स्त्री प्रत्यय के आधार पर बाहरी वर्ग की पश्चिमी और पूर्वी भाषाओं को एक वर्ग का सिद्ध करना चाहते हैं। क्रिया (गाती, दौड़ी), परसर्ग (की) संज्ञा (लड़की, बेटी) विशेषण (बड़ी, छोटी) आदि कई वर्ग के शब्दों में खूब होता है।

(ख) भाषा संयोगात्मक से वियोगात्मक होती है और कुछ विद्वानों के अनुसार वियोगात्मक से फिर संयोगात्मक। ग्रियर्सन का कथन है कि संयोगात्मक भाषा संस्कृत से चलकर आधुनिक भाषाएँ (कारक रूप में) वियोगात्मक हो गयी हैं। लेकिन आधुनिक में एक कदन आगे बढ़कर संयोगात्मक हो रही हैं।

हिन्दी------ बंगाली

उदा: राम की किताब रामेर बोई

(ग) ग्रियर्सन विशेषणात्मक प्रत्यय 'ल' को केवल बाहरी भाषाओं की विशेषता मानते हैं, किन्तु भीतरी में भी यह पर्याप्त है। उदा: रंगीला, हठीला, भडकीला, चमकीला।

डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी का वर्गीकरण

डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने ग्रियर्सन के वर्गीकरण को अस्पष्ट एवं अनुपयुक्त ठहराया है और कहा है कि सुदूर पश्चिम की भाषा को सुदूर पूर्व की भाषा के साथ एक समुदाय में रखना किसी भी प्रकार से उचित नहीं है। इसलिए डॉ. चटर्जी ने आधुनिक आर्य भाषाओं को अपने दृष्टिकोण से वर्गीकरण किया है जिसे सभी विद्वानों ने आदर के साथ स्वीकार किया है।

(क) उदीच्य (उत्तरी) भाषाएँ

(1) सिन्धी (2) लहंदा (3) पंजाबी।

(ख) प्रदीच्य (पश्चिमी) भाषाएँ

(4) गुजराती (5) राजस्थानी।

(ग) मध्य देशीय भाषा: (6) पश्चिमी हिन्दी

(घ) प्राच्य (पूर्वी) भाषाएँ: (7) पूर्वी हिन्दी (8) बिहारी (९) उड़िया (10) बंगला (11) असमिया।

(ड़) दाक्षिणात्य (दक्षिणी) भाषा: (2) मराठी।

डॉ. चटर्जी पहाड़ी को राजस्थानी का प्रायः रूपान्तर - सा मानते है। इसलिए उसे यहाँ अलग स्थान नहीं दिया गया है।

2.3.3. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के वर्गीकरण:

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने चटर्जी के वर्गीकरण के आधार पर ही पुन: अपना वर्गीकरण दिया है।

(क) उदीच्य (सिंधी, लाँदी, पंजाबी)

(ख) प्रतीच्य (गुजराती)

(ग) मध्यदेशीय (राजस्थानी, पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, बिरारी)

(घ) प्राच्य (उड़िया, आसामी, बंगाली)

(ड़) दाक्षिणात्य (मराठी)।

इस वर्गीकरण में हिन्दी के प्रमुख चारों रूपों को मध्यदेशीय माना गया है।

निष्कर्षतः वर्गीकरण का आशय है कि उसके आधार पर भाषाओं की मूलभूत विशेषताएँ स्पष्ट हो जायें। किन्तु उपर्युक्त कोई भी वर्गीकरण सार्थक नहीं है। इसके आधार पर कोई भाषा-वैज्ञानिक निर्णय नहीं निकाला जा सकता।

1. प्रवृत्तियों के आधार पर इन भाषाओं में बहुत वैविध्य है। अत: सभी विषयों का समूल विचार करते हुए वर्गीकरण किया नहीं जा सकता।

2. उत्पत्ति या सम्बद्ध अपभ्रंशों के आधार पर इनके वर्ग अवश्य बनाये जा सकते हैं। इस वर्गीकरण का रूप निष्कर्ष के रूप में इस प्रकार हो सकता है -

(क) मध्यवर्गी वर्ग - पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, पहाड़ी।

(ख) पूर्वीय वर्ग - बिहारी, बंगाली, असामी, उड़िया।

(ग) मध्यपूर्वीय वर्ग - पूर्वी हिन्दी।

(घ) पमाराष्ट्री – मराठी।

(ङ) पश्चिमोत्तरी वर्ग - सिंधी, लहँदा, पंजाबी।

2.4. सारांश

भारत में आर्यों के आने के बाद से उनकी भारतीय आर्य भाषा का इतिहास शुरू होता है। भारत में आर्यभाषा का प्रारम्भ 1500 ई. पू. के आसपास से होता है। तब से आजतक भारतीय आर्थ भाषा की आयु साढ़े तीन हजार वर्षों की हो चुकी है। भाषिक विशेषताओं के आधार पर भारतीय आर्य भाषा की इस लम्बी आयु को तीन कालों में बाँटा गया है- 1. प्राचीन आर्य भाषा 1500 ई. पू - 500 ई.पू.

2. मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा - 500 ई. पू. 1000 ई.

3. आधुनिक भारतीय अर्थ भाषा - 1000 ई. से अब तक।

प्राचीन आर्यभाषा काल में वैदिक संस्कृत की भाषा मिलती है तो मध्यकालीन आर्य भाषा काल में पालि प्राकृत भाषाओं का रूप और रचनाएँ प्राप्त होती है। तृतीय काल या आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के काल में अपभ्रंश के विभिन्न रूप, आधुनिक आर्य भाषाओं का विकास हुआ है। इसके अंतर्गत सिंधी, पंजाबी, हिन्दी, गुजराती, मराठी, बँगला, असमी, उड़िया आदि भाषाओं का विकास तथा प्रमुख बोलियाँ मिलती हैं। हार्नल, ग्रियर्सन, चटर्जी, धीरेंद्र वर्मा आदि भाषा विद्वानों ने भाषाओं का वर्गीकरण करके आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं को एक निश्चित रूप प्रदान किए हैं।

2.5. बोध प्रश्न

1. भारतीय आर्य भाषाओं के इतिहास पर प्रकाश डालिए।

2. आधुनिक आर्य भाषाओं का वर्गीकरण के बारे में चर्चा कीजिए।

3. भारत में आर्यों के आगमन से लेकर आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं तक भाषा के उद्भव विकास के बारे में प्रकाश डालिए।

2.6. सहायक ग्रंथ सूची

1. हिन्दी भाषा - डॉ. भोलानाथ तिवारी।

2. हिन्दी भाषा के इतिहास - डॉ. धीरेंद्र वर्मा।

3. हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास – डॉ. उदय नारायन तिवारी।

डॉ. एम. मंजुला

3. हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास

3.0. उद्देश्य

पिछले अध्यायों में हम विश्व भाषाओं को विकास, वर्गीकरण, भारतीय आर्य भाषाओं के वर्गीकरण के बारे में जान चुके हैं। इस अध्याय में हिन्दी भाषा के बारे में जानेंगे। इस अध्याय को पढ़ने के बाद हम-

-हिन्दी भाषा का उद्‌भव, विकास के बारे में

-हिन्दी भाषा की प्राचीन बोलियों के बारे में,

-संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओं के बारे में जान पायेंगे।

रूपरेखा

3.1. प्रस्तावना

3.2. हिन्दी भाषा का उद्भव, विकास

3.2.1. आदिकाल (हिन्दी भाषा का आरंभकाल)

3.2.2. मध्यकाल

3.2.3. आधुनिक काल

3.3. संस्कृत भाषा

3.4. पाली भाषा

3.5. प्राकृत भाषा

3.6. अपभ्रंश भाषा

3.7. सारांश

3.8. बोध प्राप्त

3.9. सहायक ग्रंथ

3.1. प्रस्तावना

भारतीय आर्य भाषाओं के वर्गीकरण के अंतर्गत यह मालूम होता है कि प्रारंभिक हिन्दी का विकास मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं से हुआ है। जार्ज ग्रियर्सन ने बताया कि मध्यवर्ती समुदाय के अंतर्गत पूर्वी हिन्दी, केन्द्रीय समुदाय से पश्चिमी हिन्दी का विकास हुआ। भाषाई तत्व यानी व्याकरणिक अंशों के आधार पर ग्रियर्सन ने पुनः विभाजन करके बताया कि मध्यदेशी भाषाओं शाखा से पश्चिमी हिन्दी और अन्तर्वर्ती शाखा से पश्चिमी हिन्दी के विशेष धनिष्ठता वाली भाषाएँ पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, पहाड़ी का उद्भव हुआ है। मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं से विकसित हिन्दी भाषा के विकास क्रम को था इतिहास को तीन काल खंडों में विभाजित कर देख सकते हैं। जैसे आरंभिककाल, मध्यकाल और आधुनिक काल। इस इकाई में आधुनिक हिन्दी तक हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास के बारे में जानेंगे।

3.2. हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास

हिन्दी नाम : हिन्दी शब्द का प्रयोग मुख्य रूप से तीन अर्थों में हुआ है-

(क) हिन्दी शब्द अपने विस्तृतमय अर्थ में हिन्दी प्रदेश में बोली जाने वाली 17 बोलियों का घोतक है। 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में होता है, जहाँ ब्रज, अवधी, डिंगल, मैथिली, खड़ीबोली आदि प्रायः सभी में लिखित साहित्य का विवेचन हिन्दी के अंतर्गत किया जाता है।

(ख) भाषा विज्ञान में प्रायः 'पश्चिमी हिन्दी' और 'पूर्वी हिन्दी' को ही हिन्दी मानते रहे हैं। ग्रियर्सन ने इसी आधार पर हिन्दी - प्रदेश की उपभाषाओं को पश्चिमी, पूर्वी हिन्दी नाम दिया था। इन के अनुसार हिन्दी आठ बोलियों - ब्रज, खड़ीबोली, बुन्देली, हरियाणी, कनौजी, अवधी, बघेली छत्तीसगढ़ का सामूहिक नाम है।

(ग) 'हिन्दी' शब्द का संकुचिततम अर्थ है 'खड़ीबोली हिन्दी' जो आज हिन्दी प्रदेशों की सरकारी भाषा है, पूरे भारत की राजभाषा है। हिन्दी- प्रदेशों के शिक्षा का माध्यम है जिसे 'परिनिष्ठित हिन्दी' या 'मानक हिन्दी' आदि नामों से भी पुकारते हैं।

उद्भव और विकास: भारत के मध्यदेश में शौरसेनी अपभ्रंश से हिन्दी भाषा का विकास हुआ है। अपभ्रंश भाषा की समाप्ति लगभग 10 वीं शताब्दि 1000 ई. के आसपास तक रहा तद्पश्चात् मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं के अंतिम रूप - से धीरे-धीरे आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का रूप ग्रहण कर लिया। 11वीं शताब्दी के आरंभ से हिन्दी के विकास का आरंभ हुआ। वैसे बोलचाल के रूप में इसका विकास और भी पहले हो चुका है होगा। परंतु प्रकरणों के अभाव में कोई निश्चित तिथि देना सर्वथा कठिन कार्य है और जो प्रकरण मिलते हैं वे साहित्यिक रचना के रूप में मिलते हैं। साथ ही यह निर्विवाद सत्य है कि साहित्य रचना तभी किसी भाषा में आरम्भ होती हैं जब उसका यथेष्ट विकास हो जाता है और वह भावों के वहन करने में पूर्ण समर्थ हो जाती है। अतएव ईसा की दसवीं शताब्दी से ही हिन्दी साहित्य के जब दर्शन होने लगते है तब इससे पूर्व ही हिन्दी की उत्पत्ति हो जाना नितान्त स्वाभाविक है। प्रारंभिक हिन्दी भाषा के रूप में प्राकृत-अपभ्रंश का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। आगे चलकर हिन्दी का विकास और विभिन्न बोलियाँ भी विकसित हुई। भारत में मुसलमानी शासन के कारण भी हिन्दी भाषा पर अरबी-फारसी का प्रभाव पड़ा। अरबी-फारसी शब्दावली से भरी हुई एक शैली उर्दू के नाम से विकसित हुई। बाद में मुसलमान शासकों के दक्षिण भारत राज्यों में पहुँचने पर वहाँ भी दक्षिण भारत की भाषाओं के संपर्क तथा प्रभाव से हिन्दी - भाषा दक्खिनी हिन्दी के रूप में विकसित हुई।

हिन्दी के आरम्भिक रूपों का आभास हमें सर्व प्रथम 'हेमचन्द्र शब्दा नुशासन' में उद्धृत उदाहरणों में मिल जाते हैं। उनसे ज्ञात होता है कि हिन्दी में वे सभी ध्वनियाँ विकसित हो गई थी जो तत्कालीन पश्चिमी अपभ्रंश में विद्यमान थी। जैसे संस्कृत के श,ष, के स्थान पर तत्कालीन हिन्दी में 'स' ध्वनि का प्रचार था। स्वरों में से ऋ, ॠ, ऌ, ॡ का सर्वथा लोप हो गया था और इनके स्थान पर क्रमशः इ, उ, ए तथा ल ध्वनियों का प्रयोग होता था। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उस समय हो गयी। हिन्दी में ह्रस्व 'ए' और ह्रस्व 'आ' का प्रचार था, जो ध्वनियाँ कालान्तर में लुप्त हो गयी। यद्यपि इन ध्वनियों के लिए देवनागरी लिपि में चिह्न नहीं थे, यद्यपि इनका प्रयोग पर्याप्त मात्रा में होता था और इनके उच्चारण का पता छन्द शास्त्र की दृष्टि से सुगमता चल जाता था। जैसे 'एकादश' के छः मात्राएँ न होकर 'पाँच' भाषाएँ इसलिए मानी गयी हैं क्योंकि यहाँ 'ए' ह्रस्व है। सन् 1000 ई. से हिन्दी भाषा अपने अस्तित्व में पूर्ण रूप से आ गयी। 19वीं

शताब्दी के बाद से खड़ीबोली हिन्दी का विकास समुचित ढंग से आरम्भ होता है। ये सब हिन्दी के विकास के विभिन्न सोपान हैं। इन 1000 साल के इतिहास का अध्ययन जिसे सुविधा की दृष्टि से तीन कालों के विभाजित कर सकती हैं।

3.2.1. आदिकाल (1000 ई. से 1500 ई. तक):

हिन्दी भाषा का यह आरम्भिक काल था। इसलिए हिन्दी पर अपभ्रंश का अत्यधिक प्रभाव था। परन्तु हिन्दी अपनी विभिन्न बोलियों एवं उपभाषाओं से रूप ग्रहण करके स्वतंत्र विकास की ओर भी अग्रसर हो रही थी। इसलिए इस काल की हिन्दी में विभिन्न बोलियों के रूपों का सम्मिश्रण मिलता है। हिन्दी की उस समय प्रवृत्ति उद्भव शब्दों को ग्रहण करने की ओर अधिक थी, परन्तु कितने ही विदेशी शब्द भी इसके शब्द भण्डार की वृद्धि कर रहे थे। साथ ही देशज शब्दों की संख्या भी कम न थी, जिन्हें ग्रहण करके हिन्दी आगे बढ़ रही थी। इस काल की भाषा में मुख्य रूप से डिंगल, मैथिली, ब्रज, खड़ी बोली, पंजाबी, अवधी. दक्खिनी, बोलियों का पर्याप्त सम्मिश्रण मिलता है। इस काल की हिन्दी के साहित्यकारों में से गोरखनाथ, चन्दबरदाई, नरपति नाल्हा, विद्यापति, अमीर खुसरो, ख्वाजा बन्दा नवाज शाहा, मीराजी आदि के नाम उल्लेखनीय है। इनकी हिन्दी अपभ्रंश के बहुत निकट है। जैसे अपभ्रंश में संयुक्त स्वरों का अभाव था, वैसे ही इस काल की हिन्दी में भी संयुक्त स्वरों का अभाव दिखाई देता है। साथ ही तद्भव, देशज एवं विदेशी शब्दों का प्रयोग भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है। उस समय का शासक मुसलमान था। उनकी मातृभाषा तुर्की और शासन भाषा फारसी थी। भारतीयों के साथ व्यवहार एवं संपर्क के लिए प्राचीन हिन्दी का प्रयोग होता था। उस समय की हिन्दी डिंगल और पिंगल के नाम से जाना जाता था। इस काल में हिन्दी का एक तीसरा रूप भी विकसित हुआ जिसे कुछ विद्वानों ने हिंदवी की संज्ञा दी है।

डिंगल हिन्दी का वह रूप है जिसका संबंध राजस्थानी साहित्य से है। डिंगल त्याहित्य की दो प्रमुख रचनाएँ श्रीधर कृत रणमल छंद और कल्लौल कवि का ढोला मारू रा दोहा। पिंगल वस्तुतः मध्यदेश की साहित्यिक ब्रजभाषा का नाम था। हिंदवी का रूप 13 वीं शताब्दी के आसपास अमीर खुसरों के साहित्य में दिखाई देता है। हिन्दी भाषा के आदिकालीन स्वरूप की जानकारी के लिए उस समय के उपलब्ध हिन्दी के जैन, सिद्ध, बौद्ध, नाथ आदि धार्मिक साहित्य को आधार बनाना पड़ता है। इन रचनाओं की भाषा अपभ्रंश से ओतप्रोत है। प्राचीन हिन्दी के अंतर्गत बौद्ध और सिद्धों की भाषा में पश्चिमी एवं पूर्वी अपभ्रंश के शब्दों का मिला जिला रूप देखने को मिलता है। इनकी भाषा को संधा या संध्या से भी पुकारा जाता है। सिद्धों की वज्रयानी शाखा के प्रमुख कवियों में से 'सरहपा' एक है। उनकी रचनाओं में पुरानी हिन्दी का रूप दिखाई देता है।

हिन्दी के प्राचीन रूप का विकास आगे चलकर आदिकालीन रासो साहित्य में देखा जा सकता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में अनेक रासो ग्रंथों का उल्लेख किया गया है। परंतु इनमें बीसलदेव रासो तथा पृथ्वीराज रासो विशेष महत्व की रचनाएँ हैं। पृथ्वीराज रासों में जगह-जगह तरह-तरह के भाषा-रूप मिलते हैं। इसमें हिन्दी, राजस्थानी मिश्रित हिन्दी, ब्रजभाषा के रूप तथा विकृत अपभ्रंश के रूप दिखाई देते हैं। अधिकांश विद्वानों ने इसकी भाषा पिंगल ही बताई है जो ब्रजभाषा का ही प्राचीन रूप है। आदिकालीन साहित्य में जगनिक द्वारा रचित 'आल्हाखंड' का भी विशेष स्थान है। 13 वीं शताब्दी के आसपास विकसित हिन्दी के एक अन्य रूप हिन्दवी की झलक हमें अमीरखुसरो के साहित्य में दिखाई देती है। इनकी पहेलियाँ, मुकरियाँ, दोसखुन आदि अत्यंत प्रसिद्ध हैं। इन रचनाओं में हिन्दी के ठेठ खड़ी बोलचाल की भाषा के रूप का दर्शन होता है।

14वीं शताब्दी में मुसलमानों ने भारत के दक्षिणी राज्यों पर भी आक्रमण करना आरंभ किया। इन आक्रमणों के कारण उस समय की राजधानी के आस-पास की बोली का भी प्रवेश दक्षिण में हुआ। हिन्दी भाषा के उस रूप में दक्षिण भारत की भाषाओं के शब्द भी शामिल हो गए। धीरे-धीरे हिंदी भाषा के इस रूप में स्थिरता आई और आगे चलकर दकिनी या दक्खिनी हिन्दी के नाम से जानी गई। यह खड़ीबोली का वह रूप है जिसमें एक ओर ब्रजभाषा तथा फारसी के शब्दों की बहुलता दूसरी ओर दक्षिण भारत की भाषाओं के शब्दों की।

3.2.2. हिन्दी भाषा का मध्यकाल : [1500 ई. से 1800 ई. तक]

इस काल तक हिन्दी के रूप में पर्याप्त विचार आने लगा। एक ओर तो हिन्दी बोलियाँ विकसित होने लगी थी और उनमें स्वतंत्र रूप से साहित्य रचना होने लगी, दूसरी ओर हिन्दी पर से अपभ्रंश का भी प्रभाव नष्ट होने लगा या तथा हिन्दी अपना निर्मित पथ पर स्वयं अग्रसर होने लगी थी। इस समय तक क, ख, ग, ज, फ आदि विदेशी ध्वनियाँ हिन्दी के व्यंजनों में सम्मिलित हो गयी थी, बहुत से अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग खुलकर होने लगा था और ये सभी विदेशी शब्द के ढाँचे में ढलकर प्रकृति के अनुकूल बोले और लिखे जाने लगे थे। इस समय हिन्दी के अधिकाधिक धार्मिक साहित्य लिखा गया। इसलिए अब हिन्दी में तद्भव एवं देशज शब्दों की अपेक्षा तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक होने लगा और अपभ्रंश के स्थान पर हिन्दी संस्कृत भाषा से अधिक प्रभावित होने लगी। विद्वानों का विचार है कि इसी काल में लगभग 3500 फारसी शब्द 2500 अरबी शब्द लगभग 100 तुर्की शब्द कुछ पुर्तगाली, फ्रांसीसी, डच आदि के शब्द हिन्दी में आये। इस काल में हिन्दी की ब्रज एवं अवधी बोलियों में अधिक साहित्य रचा गया। उस काल में मैथिली, दक्खिनी, हिन्दी, उर्दू, डिंगल भाषा आदि में भी साहित्य रचा जाता था।

साहित्य के इतिहास में इस काल को भक्तिकाल की संज्ञा दी गई है। इस काल के अधिकांश कवियों ने भक्ति - साहित्य की रचना की है। इन कवियों ने अपनी स्निग्ध, मधुर वाणी द्वारा इन कवियों ने जन मानस में भक्ति का संचार किया। वास्तव में भक्ति-पंथ का जन्म- -स्थान दक्षिण भारत था। दक्षिण से उत्तर आई भक्ति का, उत्तर भारत के भक्त कवियों ने खूब सारण भरण-पोषण किया। इस काल के अधिकांश कवियों ने ब्रज तथा अवधी में ही अपने साहित्य की रचना की। जायसी, सूर, तुलसी, मीरा और कबीर हिन्दी के मध्यकालीन भक्त कवियों में सर्वाधिक चर्चित और आदरणीय हैं जिन्होंने अपने साहित्य-द्वारा ब्रज तथा अवधी भाषा का परिमार्जन एवं परिष्कार कर उनका संपूर्ण विकास किया। दादू, गुरु गोविंदसिंह, प्राणनाथ, मलूकदास आदि धार्मिक सुधारक और संतकवि अपनी वाणी द्वारा भक्ति के द्वारा हिन्दी भाषा का भी परिष्कार किया तथा इसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। भक्तिकाल के बाद रीतिकालीन हिन्दी साहित्य की रचना ब्रजभाषा में हुई। रीतिकाल के कवि बिहारी, मतिराम, धनानंद, भूषण, केशव आदि ने कलात्मक रचनाएँ प्रस्तुत की। यह काल खड़ीबोली गद्य के विकास का पहला चरण है। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित खोज विवरणों से यह पता चलता है कि 18वीं सदी में ब्रजभाषा के समानांतर गद्य और पद्य दोनों में व्यापक रूप से विभिन्न सामाजिक- सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए खड़ीबोली का व्यवहार होता था। खड़ीबोली का विकास जो सही अर्थों में हिन्दी का विकास है उसका सूत्रपात रीतिकाल में ही हुआ है।

3.2.3. आधुनिक काल (1800 10 ई. से अब तक)

इस काल में आकर हिन्दी पूर्णतथा विकसित हो गयी। अभी तक वह पद्य के लिए ही अधिक प्रयुक्त होती थी और उसमें गद्य साहित्य बहुत कम लिखा गया। परन्तु इस काल में आते ही एक ओर तो हिन्दी की बोलियों में पर्याप्त समृद्ध साहित्य लिखा जाने लगा, दूसरी ओर उसकी थे बोलियाँ इतनी विकसित हो गयी कि वे बोली न रहकर उपभाषा

के पद आसीन हो गयी। सबसे बड़ी बात यह है कि इस काल में आकर हिन्दी की एक खड़ीबोली ने इतना अधिक विकास किया कि वह पहले तो मेरठ, मुजफ्फनगर आदि जिलों की केवल बोलचाल की ही बोली थी, परन्तु अब उपभाषा बनकर सर्वप्रथम पद्य एवं गद्य की एक समृद्ध भाषा बनी, जिसमें संस्कृत के तत्सम शब्द पर्याप्त मात्रा में आ गये और इनमें अरबी, फारसी के साथ- साथ अंग्रेजी के शब्द भी प्रचुर मात्रा में अपना लिये गये।

इस प्रकार कुछ ही वर्षों में खड़ी बोली ने एक 'परिनिष्ठित हिन्दी' का रूप धारण कर लिया, जिसमें से पुराने तद्भव एवं देशज शब्द निकल गये, नये-नये पारिभाषिक शब्दों को अपना लिया गया और जिसे ज्ञान-विज्ञान के लिए अत्यन्त सक्षम, सशक्त एवं समर्थ भाषा बना लिया गया। अब इसी परिनिष्ठित हिन्दी का प्रयोग भारत के कार्यालयों, विद्यालयों, कचहरियों आदि में बड़ी सरलता से होता है, इसी में राजनीतिक समस्याओं का समाधान किया जाता है, यही सार्वजनिक भाषण की भाषा बनी हुई है, इसी को उत्तर प्रदेश, बिहार, दिल्ली, राजस्थान, हरियाणा और मध्य प्रदेश की राज्य भाषा घोषित किया गया है, इसी में भारत सरकार की राजाज्ञाएँ प्रकाशित होती हैं, इसी भाषा को विदेशों में भारत की 'हिन्दी' भाषा माना जाता है, इसी में भारत की समुन्नत पत्र पत्रिकाएँ प्रकाशित होती है, इसी भाषा में अत्यधिक समुन्नत साहित्य की रचना हो रही है, इसी में हिन्दी का सर्वोत्कृष्ट गद्य साहित्य लिखा जा रहा है। यही आजकल अधिकांश हिन्दी कवियों की काव्य भाषा है। इसी परिनिष्ठित भाषा में अब जन साधारण के अंतर्गत पत्र-व्यवहार होता है और इसी भाषा को भारतीय संविधान में 'राष्ट्रभाषा' घोषित किया गया है।

आज हिन्दी अपने परिनिष्ठित रूप विकसित होकर भारत की राष्ट्रभाषा के समुन्नत पद पर प्रतिष्ठित है। आज हिन्दी में विविध प्रकार के पारिभाषिक शब्दों का भी निर्माण हुआ है जिसका प्रयोग आधुनिक विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में होता है। आज हिन्दी का बहुमुखी विकास हो रहा है। उसमें विभिन्न नूतन ध्वनियों को अंकित करने के लिए लिपि चिह्नों का आविष्कार हो रहा है।

आधुनिक हिन्दी भाषा खड़ीबोली साहित्यिक भाषा की स्वतंत्र परंपरा 19वीं शताब्दी में ही विकसित हुई। साहित्यिक हिन्दी खड़ीबोली के विकास की दिशाएँ भारतेंदुहरिश्चंद्र के पूर्व और हरिश्चंद्र काल में देख सकते हैं। पूर्व हरिश्चंद युग 1799 में फोर्ड विलियम कॉलेज, कलकत्ता की स्थापना हुई। इसके आचार्य जॉन गिलक्रिस्ट ने भारतीय भाषाओं का अध्ययन किया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रशासकों को हिन्दी सीखने के लिए उन्होंने एक व्याकरण और एक शब्दकोश का निर्माण किया। वे इस भाषा को हिन्दुस्तानी कहना अधिक उचित समझते थे। भारतेन्दु पूर्व काल में अनेक पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन होने लगा। हिन्दी का सबसे पहला पत्र 'उदंत मार्तंड' 1826 में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। 1828 में बंगदूत, 1854 में कलकत्ता से 'समाचार सुधा वर्षण' नाम का दैनिक पत्र प्रकाशित हुआ। खड़ीबाली हिन्दी के विकास में इन पत्र पत्रिकाओं का योगदान महत्वपूर्ण है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र जी ने अपने काल में हिन्दी भाषा में प्रयुक्त होने वाली अरबी-फारसी और संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग को कम करते हुए इन शैलियों से भिन्न, भाषा का शिष्ट तथा परिमार्जित रूप प्रस्तुत किया। इस कार्य द्वारा उन्होंने आधुनिक हिन्दी की बहुत ही मजबूत नींव डाली। भारतेंदु स्वयं संस्कृत भाषा के महान पंडित होते हुए भी वे जन-भाषा हिन्दी के विकास के पक्षधर रहे। इनकी भाषा में ब्रजभाषा तथा देशज शब्दों का प्रयोग बड़े ही स्वाभाविक ढंग से हुआ है। व्याकरणिक अंगों में भी जो त्रुटियाँ होती थी इस दिशा में भी जो सुधार कार्य हुआ वह भारतेन्दु युग की देन है। आगे चलकर भाषा-परिमार्जन के कार्य को द्विवेदी युग में अपेक्षित परिणति प्राप्त हुई। भारतेंदु युग में गद्य की नई-नई विधाओं जैसे उपन्यास, कहानी, निबंध, नाटक, एकांकी, आलोचना आदि के सृजन करके खड़ीबोली के विकास

को विभिन्न दिशाओं में आगे बढ़ाया। भारतेंदु युग के बाद द्विवेदी युग में हिन्दी का लगभग सर्वांगीण विकास हुआ। इस युग में हिन्दी की सभी गद्य- शैलियों का विकास हुआ। आत्मकथात्मक, आलोचनात्मक, भावात्मक, हास्य व्यंग्यप्रधान सभी शैली रूपों का विकास इस युग में दिखाई पड़ता है। राष्ट्रीय आंदोलन से संबंधित अनेक रचनाएँ भी हिन्दी भाषा के विकास में योगदान दिया।

आज हिन्दी भाषा का क्षेत्र विस्तृत हुआ है। हिन्दी राष्ट्रीय सीमा को पार करके अंतर्राष्ट्रीय सीमा तक व्याप्त हुई है। सूचना एवं प्रसारण के नए-नए तकनीकी आविष्करों से भी हिन्दी-भाषा के विकास को तेज गति मिली है।

3.3. संस्कृत भाषा का विकास क्रम

भारतीय आर्यभाषा का प्राचीनतम रूप वैदिक संहिताओं में मिलता है। इन संहिताओं की भाषा में एकरूपता नहीं है। यह काव्य- भाषा होने के कारण तत्कालीन बोलचाल की भाषा से कुछ भिन्न है। उस समय तक आर्यों का केन्द्र सप्तसिन्धु या आधुनिक पंजाब था। ब्राह्मणों- उपनिषदों की भाषा संहिताओं के बाद की है। इस में उतनी जटिलता नहीं है। इनके गद्यभाग की भाषा तत्कालीन बोलचाल की भाषा के बहुत निकट है। भाषा का और विकसित रूप सूत्रों में मिलता है। पाणिनि ने अपने व्याकरण में भाषा को अपेक्षाकृत अधिक परिनिष्ठित किया। पाणिनि की रचना के बाद बोलचाल की भाषा पालि प्राकृत, अपभ्रंश, आधुनिक भाषाओं के रूप में विकास करती आज तक आयी है। रामायण-महाभारत की भाषा पाणिनी के बाद की है। फिर कालिदास से होते क्लैसिकल संस्कृत, हितोपदेश तक तथा और आगे तक आयी है। इस प्राचीन आर्यभाषा के वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत दो रूप मिलते हैं।

1. वैदिक संस्कृत (1500 ई.पू. से 800 ई.पू. तक)

वैदिक संस्कृत वैदिक संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों तथा प्राचीन उपनिषदों आदि में मिलता है।

(क) ध्वनियाँ

मूलस्वर : ऊ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ

संयुक्त: ए, ऐ, ओ, औ

व्यंजन : क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व,

श, ष, स, ह, ळ् ळह।

विसर्ग, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय ह के उपस्वनिम थे।

मूल भारोपीय भाषा में स्वराघात बहुत महत्त्वपूर्ण था। भारत-ईरानी स्थिति में विकसित हुआ। संस्कृत को परम्परागत रूप से विकसित हुआ। संस्कृत को परम्परागत रूप से अनुदात्त, उदात्त, एवं स्वरित तीन प्रकार के स्वराघाकत (संगीतात्मत) प्राप्त हुए। बिना स्वराघात के वैदिक छन्दों को पढ़ना अशुद्ध माना जाता है। स्वराघात के कारण शब्द का अर्थ भी बदल जाता है।

उदा- 'इन्द्रशत्रु' शब्द को लेलें।

इन्द्र / शत्रु = जिसका शत्रु इन्द्र है (बहुव्रीहि)

इन्द्र शत्रु = इन्द्र का शत्रु (तत्पुरुष)

अतः शब्द आदि के अर्थ जानने में स्वराघात का अधिक महत्व है। स्वराघात में परिवर्तन से कभी-कभी लिंग में भी परिवर्तन हो जाता है। टर्नर के अनुसार, वैदिक संस्कृत में संगीतात्मक एवं बलात्मक दोनों ही स्वराघात हैं।

(ख) रूप - रचना

वैदिक भाषा में तीन लिंग थे - पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग। तीन वचन थे - एक, द्वि और बहु, कारक विभक्तियाँ आठ थीं: कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण और सम्बोधन विशेषणों के रूप भी संज्ञाओं की तरह चलते थे। मूल भारोपीय में सर्वनाम के मूल या प्रतिपादक बहुत अधिक थे। विभिन्न बोलियों में कदाचित विभिन्न मूलों के रूप चलते थे। मूलतः विभिन्न मूलों से बने रूप एक ही मूल के रूप माने जाने लगे। उत्तम पुरुष का 'अस्मद' सभी रूपों का मूल माना जाता है। यदि ध्यान से देखे जाय-

अह - अहम

म- माम, मया, मम, मयि

आव - आवम्, आवाम्, वाम्, आवयोः

वय- वय

अस्म- अस्माभि, अस्मभ्यम्, अस्मे

आदि मूलों पर भी आधारित रूप हैं। मध्यम आदि अन्य सर्वनामों में भी एकाधिक मूल हैं। वैदिक भाषा में धातुओं के रूप आत्मने तथा परस्मै, दो पदों में चलते थे। क्रिया पद तीनों वचनों (एक, द्वि, बहु) एवं तीनों पुरुषों, (उत्तम, मध्यम, अन्य) में होते थे। काल तथा क्रियार्थ मिलाकर क्रिया के - लट्,लङ्, लिट्, लुङ्, लुट्, निश्चयार्थ, संभावनार्थ (लेट्), विध्यर्थ, आदरार्थ, आज्ञार्थ तथा आज्ञार्थ (लोट) कुल ग्यारह प्रकार के रूपों का प्रयोग मिलता है। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में लेट् का प्रयोग बहुत मिलता है। किन्तु धीरे-धीरे इसका प्रयोग कम होता गया और अन्त में लौकिक संस्कृत में पूर्णतः समाप्त हो गया। वैदिक में भविष्य के रूप बहुत कम हैं।

(ग) समास

समास रचना की प्रवृत्ति मूल भारोपीय एवं भारत-ईरानी में थी। वहीं से यह परम्परा वैदिक संस्कृत में आयी। वैदिक समस्तपद प्रायः दो शब्दों के ही मिलते हैं। वैदिक में तत्पुरुष, कर्मधारय, बहुव्रीहि एवं द्वन्द्व, ये चार ही समास मिलते हैं। लौकिक संस्कृत के शेष दो समास बाद में विकसित हुए हैं।

(घ) शब्द

वैदिक भाषा में-

(1) तद्भव या मूलशब्द से विकसित शब्द प्रयुक्त होने लगे। वेद में 'इह' (यहाँ) शब्द इसी प्रकार का है। इसका मूलशब्द 'इध' है। पालि 'इधों' और अवेस्ता 'इद' इसी बात के प्रमाण हैं कि महाप्राण व्यंजन के स्थान पर 'ह' के विकास से 'इध' से ही 'इह' बना है।

(2) अनेक आर्येतर शब्दों का आगमन इसकाल में भाषा में होने लगा है। उदाहरण के लिए वैदिक भाषा में अणु, अरणि, कपि, काल, गण, नाना, पुष्कर, पुष्प, मयूर, अटवी, तंडुल, मर्कट-आदि शब्द एक ओर यदि द्रविड़ से आये हैं, तो वार, कम्बल, बाण, कोसल, अंग (स्थानवाली) आदि आस्ट्रिक भाषा से आये हैं।

(ङ) बोलियाँ

ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार वैदिक काल में प्राचीन आर्यभाषा के कम-से-कम तीन रूप- या बोलियाँ - पश्चिमोत्तरी, मध्यवर्ती, पूर्वी- अवश्य थे, अफगानिस्तान से लेकर पंजाब तक मश्चिमोत्तरी पंजाब से लेकर मध्य उत्तर प्रदेश तक मध्यवर्ती, उसके पूर्व पूर्वी थे। ऋग्वेद में पश्चिमोत्तरी बोली का ही प्रतिनिधित्व हुआ है। पश्चिमोत्तरी को उस समय 'उदीच्य' कहते थे।

2. लौकिक संस्कृत (800 ई.पू. से 500 ई. पू. तक)

संस्कृत शब्द का प्रथम प्रयोग वाल्मीकि रामायण में प्राप्त होता है। 'संस्कृत' का अर्थ- है संस्करित, शिष्ट या अप्रकृत भाषा। वैदिक काल में इस भाषा के तीन- उत्तरी, मध्य देशी, पूर्वी भौगोलिक रूपों का उल्लेख किया गया है। लौकिक संस्कृत का मूल आधार उत्तरी बोली मानी जाती है। पाणिनि ने अन्यों के भी कुछ रूप लेकर उनको वैकल्पिक कहा है। मध्य देशी तथा पूर्वी का भी संस्कृत पर कुछ प्रभाव है। लौकिक या संस्कृत साहित्यिक भाषा है। जिस प्रकार हिन्दी में जयशंकर प्रसाद की गद्य या पद्य- भाषा को बोलचाल की भाषा नहीं कह सकते, उसी प्रकार संस्कृत को भी बोलचाल की भाषा नहीं कह सकते। जिस प्रकार प्रसाद जी की भाषा का आधार मानक खड़ीबोली हिन्दी है उसी प्रकार पाणिनीय संस्कृत भी तत्कालीन पण्डित-समाज की बोलचाल की भाषा पर ही आधारित है। पाणिनि द्वारा उसके लिए 'भाषा' (भाषा = बोलना) शब्द का प्रयोग हुआ।

• विशेषताएँ

1. लौकिक संस्कृत का मानकीकरण (Standardisation) हुआ था।
2. भाषा की जटिलता कम होकर एकरूपता आ गयी।
3. 'ऌ', 'ॠ', 'ॡ' का उच्चारण स्वरवत् होता था। लौकिक संस्कृत में उनका उच्चारण 'लि', 'रि','री', जैसा होने लगा।
4. 'ऐ', 'ओ' का उच्चारण वैदिक में 'आई', 'आउ' था। किन्तु, लौकिक संस्कृत में ये 'अ', 'अउ' हो गये।
5. 'ए', 'ओ', का उच्चारण वैदिक (संस्कृत) में 'अइ', 'अउ', था। अर्थात ये संयुक्त स्वर मूलस्वर हो गये।
6. लेखन में ळ् और ळ्ह अक्षर समाप्त होकर उनके स्थान पर ड़, ढ़ प्रयुक्त होने लगे।
7. अनेक ध्वनियों के उच्चारण स्थान में अन्तर आ गया। ल, स दंतमूलीय अक्षर संस्कृत में आकर दन्त्य हुए।
8. वैदिक साहित्य में संगीतात्मक स्वराघात था। लौकिक संस्कृत में कलात्मक स्वराघात विकसित हुआ।
9. क्रियारूपों में लुङ् लङ् लिट् में कुछ परिवर्तन आगये।
10. वैदिक में छोटे-छोटे समासों के बदले संस्कृत में बड़े-बड़े समस्तपद आने लगे। तत्पुरुष, कर्मधारय, बहुव्रीहि, द्वन्द्व

के साथ द्विगु और अव्ययीभाव भी प्रयुक्त होने लगे।

11. वैदिक संस्कृत में उपसर्ग स्वच्छन्दता से कहीं भी आ सकता है, किन्तु लौकिक संस्कृत में यह स्वच्छन्दता नहीं मिलती।

12. वैदिक संस्कृत में विजातीय शब्द आये थे- विशेषतः द्रविड़ एवं ऑस्ट्रिक से। किन्तु लौकिक संस्कृत में उनकी संख्या दो हजार तक बढ़ गई थी।

(क) द्रविड़ शब्द

संस्कृत में द्रविड़ से एक हजार से बढ़कर आये हैं। उदा - कीर (तोता), कुक्कुट (मुर्ग), कुक्कर (कुत्ता), धुण (धुन), नक्र (घडियाल), मर्कट (बन्दर), मीन (मछली), कानन (जंगल)।

(ख) ऑस्ट्रिक शब्द

संस्कृत में ऑस्ट्रिक के शब्द सौ से ऊपर हैं। उदा: ताम्बूल, श्रृंगार, आकुल, आपीड (मुकुट), कबरी (बाल), कुविन्द (जुलाहा) आदि।

(ग) यूनानी शब्द

यूनानी शब्द भी संस्कृत में बहुत से आये हैं। उदा :- यवन, यवनिका, द्रम्म (दाम), होडा, त्रिकोण, सुरंग, क्रमेल (ऊँट) आदि।

(घ) रोमन शब्द

उदा :- दीनार।

(ङ) अरबी शब्द

उदा :- रमल, इक्कबाल, इत्यशाल, ईसराफ, वोल्लाह (विशेष रंग का घोड़ा) आदि।

(च) ईरानी शब्द

उदा :- हिन्दू, बारबाण, ताजिक (ईरानी व्यक्ति) : मिहिर (सूर्य), बादाम (मेवा विशेष), बालिश (तकिया), खोल (खर्बूजा), निःशाण (जुलूस) आदि।

(छ) तुर्की शब्द

उदा :- तुरुष्क, खच्चर।

(ज) चीनी शब्द

उदा :- चीन (चीनांशुक, चीनचोलक), मसार (एक रत्न)।

- **बोलियाँ**

वैदिक भाषा में पश्चिमोत्तरी, मध्यदेशी तथा पूर्वी बोलियों का उल्लेख है। प्रायः संस्कृत काल आर्यभाषा-भाषी प्रदेश में कदाचित एक दक्षिणी रूप में भी जन्म ले चुका था।

3.4.पाली भाषा

'पालि' भाषा प्रथम प्राकृत (500 ई. पू. से. 1 ई. तक) कहलाती है। पालि बौद्ध धर्म, विशेषतः दक्षिणी बौद्धों की भाषा है। 'पालि' शब्द का प्राचीनतम प्रयोग चौथी सदी में लंका में लिखित ग्रन्थ 'दीपबंस' में प्राप्त होता है। वहाँ इसका अर्थ 'बुद्धवचन' है। तत्पश्चाद 'पालि' शब्द का प्रयोग पालि साहित्य में हुआ है; किन्तु भाषा के अर्थ में नहीं। भाषा के अर्थ में वहाँ मगध भाषा, मागधी, मागधिक भाषा आदि का प्रयोग हुआ है। सिंहल के लोग 'पालि' को अब भी मागधी कहते हैं।

- **'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति**

भाषा के अर्थ में पालि का प्रयोग आत्याधुनिक है और यूरोप के लोगों द्वारा हुआ है। बिधुशेखर भट्टाचार्य 'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत 'पंक्ति' शब्द से है (पंक्ति> पति> पट्ठ > पल्लि> पालि)। कुछ विद्वानों के अनुसार वैदिक और संस्कृत आदि की तुलना में यह 'पल्लि' या गाँव की भाषा थी। अत: 'पालि' शब्द 'पल्लि' का ही विकास है। डॉ. मैक्स- वेलेसर के अनुसार 'पालि', 'पाटलि' (पाटलिपुत्र की भाषा) से उत्पन्न है। सब से प्रमाणिक व्युत्पत्ति (au thantie development) भिक्षु जगदीश कश्यप द्वारा दी गई है। इस के अनुसार 'पालि' का सम्बन्ध परियाय (पर्याय) से है। 'घम्म-परियाय' या 'परियाय' का प्रयोग प्राचीन बौद्ध साहित्य में बुद्ध के उपदेश के लिए मिलता है। इन की विकास परम्परा परिचय > पलियाय> पालियाय> पालि है।

- **'पालि' भाषा का प्रदेश**

'पालि' के प्रदेश पर बहुत से विचार प्रस्तुत होते हैं। श्रीलंका के बौद्धों तथा चाइल्डर्स के अनुसार 'पालि' मगध की बोली थी। किन्तु भाषा की विवेचना करने पर यह बात अशुद्ध ठहरती है। ध्वनि और व्याकरण की दृष्टि से इसका मागधी से साम्य नहीं है। बेस्टरगार्ड और स्टेनकोनो के अनुसार पालि उज्जइनी या विन्ध्यप्रदेश की बोली पर आधारित है। ग्रियर्सन ने इसे मागधी मानकर, इस पर पैशाची का भी प्रभाव स्वीकार किया था। इन विविध मतों से स्पष्ट होता है कि पालि में विभिन्न प्रदेशों की बोलियों के तत्त्व हैं। वस्तुतः अपने मूल में पालि मध्यप्रदेश की भाषा है। उस में अनेक प्रादेशिक बोलियों का समावेश हुआ है; विशेषतः बुद्ध की अपनी भाषा होने से मागधी के भी कुछ तत्त्व मिल गये। इस प्रकार अपने मूल रूप में पालि को शौरसेनी प्राकृत का पूर्व रूप मान सकते हैं।

- **साहित्य**

पालि साहित्य का सम्बन्ध प्रमुखतः भगवान बुद्ध से है। कोष छन्दशशास्त्र तथा व्याकरण की भी कुछ पुस्तकें लिखी गयी हैं। पालि साहित्य का रचना - काल 483 ई. पू. से लेकर आधुनिक काल तक लगभग ढ़ाई हजार वर्षों में फैला हुआ है। परम्परागत रूप से पालि साहित्य पिटक और अनुपटिक दो वर्गों में बाँटा जाता है। उन में जातक, धम्मपद, मिलिन्दपञ्हो, बुद्धघोष की अट्ठकथा, महावंश आदि प्रमुख हैं।

- **ध्वनियाँ**

पालि के प्रसिद्ध वैयाकरण कच्चायन के अनुसार पालि में 41 ध्वनियाँ हैं। दूसरे प्रसिद्ध वैयाकरण मोग्गलान के अनुसार 43 ध्वनियाँ हैं। ध्वनि - विषयक कुछ विवरण।

1. स्वरों में हस्व एँ और ओँ दो ध्वनियाँ विकसित हुई हैं।

2. ऋ, ॠ, ऌ, स्वर पूर्णतः समाप्त हो गये।

3. ऐ, औ स्वर नहीं रहै।

4. व्यंजनों में ळ् ळह ध्वनियाँ थीं।

5. विसर्ग जिह्वामूलीय, ऊष्मानीय ध्वनियाँ नहीं रहीं।

6. श, ष, स के स्थान पर 'स' मात्र रह गया।

7. अनुस्वार स्वतन्त्र रूप से उच्चरित होने लगे।

8. विविधि ध्वनि परिवर्तन आ गये -

(क) घोषीकरण

उदा :- माकन्दिय - मागन्दिय

उताहो - उदाह

(ख) अघोषीकरण

उदा :- मृदंग – मुर्तिग।

परिघ – परिख।

(ग) महाप्राणीकरण

उदा :- सुकुमार- सुखुमार।

कील – खील।

(घ) समीकरण

उदा :- चत्वर – चच्चर।

धर्म – धम्म।

कर्म – कम्म।

(ङ) र-ल का आपसी परिवर्तन

उदा :- तरुण- तलुण।

किल – किर।

(च) महाप्राण का 'ह' हो जाना

उदा :- लघु- लहु।

रधिर – रुहिर।

- **स्वराघात**

पालि में स्वराघात की स्थिति विवादास्पद है। कुछ विद्वानों के अनुसार पालि में संगीतात्मक एवं कलात्मक होने की सम्भावना है।

- **व्याकरण**

पालिभाषा व्याकरणिक दृष्टि से वैदिक संस्कृत की भाँति स्वच्छन्द एवं विविध रूपोंवाली है। इस भाषा के व्याकरण में पर्याप्त सरलीकरण हुआ है।

(क) व्यंजनान्त लोप

उदा :- विद्युत-विज्जु।

(ख) सादृश्य

उदा :- अग्नि- अग्गि।

भिक्षु- भिक्खु।

(ग) पुल्लिंग का नपुंसक लिंग को प्रभावित करना

उदा :- सुखो

(घ) द्विवचन का न होना

उदा :- पालि में द्वि वचन नहीं है।

(ङ) रूपाधिक्य

उदा :- धर्मो - धम्मे, धम्मस्मि, धम्मम्हि।

(च) मध्यम पुरुष बहु वचन 'य' के स्थान पर 'त' से प्रारम्भ होता है।

उदा :- युष्मे- तुम्हें।

युष्माकम् – तुम्हाकं।

(छ) क्रिया रूपों में 3 पुरुष और 2 वचन हैं। (द्विवचन नहीं है।)

- **बोलियाँ एवं भाषा रूप**

पालिभाषा में चार बोलियाँ हैं- पश्चिमोत्तरी दक्षिणी, मध्यवर्ती तथा पूर्वी। प्रथम प्राकृत के अन्तर्गत अभिलेखी प्राकृत भी आती है जो शिलालेखी प्राकृत है। इसके दो रूप हैं-

1. अशोकी अभिलेख और

2. अशोकेतर अभिलेख।

3. 5. प्राकृत भाषा

'संस्कृत' पण्डितों की भाषा मानी जाती थी। प्रकृतिजन्य तथा असंस्कृत, जनभाषा 'प्राकृत' कहलाती थी। यह सामान्य लोगों की भाषा थी। तत्कालीन जनभाषा से उद्भूत या विकसित रूप प्राकृत है। प्राकृत भाषा तीन कालों में विभाजित की गयी है-

(क) प्रथम प्राकृत (500 ई.पू. से 1 ई. तक)

इसके अन्तर्गत पालि तथा अभिलेखी प्राकृत आती हैं।

ख) द्वितीय प्राकृत (1 ई. से 500 ई. तक)

इसके अन्तर्गत भारत एवं भारत के बाहर प्रयुक्त विभिन्न धार्मिक, साहित्यिक और अन्य प्राकृत भाषाएँ आती हैं।

(ग) तृतीय प्राकृत (500ई. से 1000 ई. तक)

इसके अन्तर्गत अपभ्रंश आती है।

द्वितीय प्राकृत के लिए ही प्राकृत नाम का प्रयोग अधिकतः होता है।

प्राकृत भाषा के भेद

धर्म, प्रदेश, प्रयोग, लेखन- आधार आदि के आधार पर प्राकृत भाषा के विविध भेद हैं। उन में मुख्यतः शौरसेनी, गैंगानी, महाराष्ट्री, अर्धमागधी, मागधी, केकय, टक्क, ब्राचड़, खास आदि हैं।

(क) शौरसेनी

यह मूलतः मथुरा या शूरसेन के आसपास की बोली थी। मध्यदेश की भाषा होने के कारण इसे कुछ लोग संस्कृत की भाँति उस काल की मानक भाषा (Standard Language) मानते हैं। मध्यदेश संस्कृत का केन्द्रे था। इसी कारण शौरसेनी उससो बहुत प्रभावित है। संस्कृत नाटकों के गद्य की भाषा शौरसेनी ही है। कर्पूरमंजरी और अश्वघोष के नाटकों में शौरसेनी का प्राचीनतम रूप मिलता है। शौरसेनी में तत्सम शब्द अपेक्षाकृत अधिक हैं। जैनों ने अपने साम्प्रदायिक ग्रन्थों के लेखन में भी इसका प्रयोग किया है।

शौरसेनी की प्रमुख विशेषताएँ

1. असंयुक्त तथा दो स्वरों के बीच में आनेवाला संस्कृत 'त' इस में 'द' हो गया है और 'थ', 'ध' हो गया है।

उदा :- गच्छति – गच्छदि।

कथम - कधीहि।

2. 'दक्ष' क विकास सामान्यतः 'ख' में हुआ है।

उदा :- इक्षु- इक्खु।

कुक्षि- कुक्खि।

3. 'ऋ' का विकास 'इ' में हुआ है।

उदा :- गृद्ध – गिद्ध।

4. संयुक्त व्यंजनों का सरलीकरण हुआ है।

उदा :- उत्सव - उस्सव – ऊसव।

5. आदरार्थ शब्दों का परिवर्तन

उदा :- वर्तते - वट्टे।

6. रूपों की दृष्टि से कुछ शब्द संस्कृत की ओर और कुछ शब्द महाराष्ट्री की ओर झुकी है।

(ख) पैशाची

महाभारत में 'पिशाच' जाति का उल्लेख है। वे उत्तर-पश्चिम में कश्मीर के पास रहते थे। ग्रियर्सन के अनुसार पैशाची 'दरद' से प्रभावित भाषा है। हार्नल के अनुसार यह द्रविड़ों द्वारा प्रयुक्त भाषा है। पुरुषोत्तम देव के अनुसार यह संस्कृत और शौरसेनी का विकृत रूप है। गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' इसी भाषा में लिखी गयी थी। अब उसके केवल - बृहत्कथामंजरी और कथा सरित्सागर शेष हैं। देस्वरों के बीच में आनेवाले स्पर्शवर्गों के तीसरे और चौथे घोष व्यंजन अघोष में परिवर्तित होना इस भाषा की विशेषता है।

उदा :- गगन- गकन।

मेघ – मेखो।

दामोदर – तामोर।

राजा- राचा।

(ग) महाराष्ट्री

प्राकृत साहित्य की दृष्टि से महाराष्ट्री बहुत धनी है। यह काव्य-भाषा रही है। गाहा सत्तसई (हाल), रावणवहो (रावरसेन) तथा वज्जालग्ग (जयवल्लभ) इसकी अमर कृतियाँ हैं।

1. महाराष्ट्री में दो स्वरों के बीच आनेवाले अल्पप्राण स्पर्श प्रायः लुप्त हो जाते हैं।

उदा :- प्राकृत- पाउऊ।

गच्छति – गच्छइ।

2. महाप्राण स्पर्श का केवल 'ह' रह जाता है।

उदा :- क्रोधः – कोहो।

कथयति – कहेइ।

मुख- मुह।

3. ऊष्मध्वनियों का प्रायः 'ह' हो जाता है।

उदा :- तस्य – ताह।

पाषाण -पाहाण

(घ) अर्धमागधी

अर्धमागधी का क्षेत्र मागधी और शौरसेनी के बीच में है। यह प्राचीन कोसल आसपास की भाषा है। इस में मागधी की प्रवृत्तियाँ पर्याप्त मात्रा में और कुछ शौरसेनी की मिलती हैं। इस लिए इसका नाम अर्धमागधी है। इसका प्रयोग मुख्यतः जैन साहित्य में हुआ है।

भाषागत विशेषताएँ

1. ष् और श् के स्थान पर प्रायः 'स्' का प्रयोग।

उदा- शावक- सावग।

वर्ष – वास।

खुश- खुस।

2. दन्त्य का मूर्धन्य ध्वनि में बदलना

उदा :- स्थित- ठिय।

कृत्वा – कट्टु।

3. चवर्ग के स्थान पर कहीं कहीं तवर्ग का प्रयोग होता है।

उदा :- चिकित्सा – तेइच्छ।

4. स्वरों के बीच स्पर्श का लोप होकर 'य' श्रुति मिलना।

उदा :- सागर- सायर।

5. गद्य और पद्य की भाषा का अन्तर।

(ङ) मागधी

मगध के आसपास की भाषा मागधी है। इस भाषा में कोई स्वतन्त्र रचना नहीं मिलती। संस्कृत नाटकों में निम्न श्रेणी के पात्र इसका प्रयोग करते हैं। इस का प्राचीनतम रूप अश्वघोष में मिलता है।

प्रमुख विशेषताएँ

1. स, ष, के स्थान पर 'श' का प्रयोग होता है।

उदा :- सप्त-शत्त

पुरुष- पुलिश।

2. 'र' का उच्चारण सर्वत्र ल हो जाता है।

उदा :- राजा- लाजा।

3. प्रथमा एक वचन में संस्कृत अः के स्थान पर 'ए' मिलता है।

उदा :- देवः देवे।

सः – सः- शे।

(च) केकय

केकय का क्षेत्र केकय प्रदेश था। आज वहाँ 'लहँदा' (पाकिस्तान में) बोली जाती है। इस भाषा की विशेषताओं के बारे में कुछ विशेष ज्ञात नहीं है।

(छ) टक्क

टक्क का मूलत: पंजाबी का क्षेत्र है। भारत का पंजाब और पाकिस्तान के पंजाब प्रान्त का कुछ भाग इस के अन्तर्गत आता है। इसके सम्बन्ध में कुछ विशेष ज्ञात नहीं है।

(ज) खस

हिमाचल प्रदेश, गढ़वाल, कुमाऊँ और नेपाल में बोली जानेवाली पहाड़ी बोलियों का विकास 'खस' अपभ्रंश से माना जाता है। शौरसेनी प्राकृत का एक उत्तरी रूप ही 'खस प्राकृत' मानी जाती है।

(झ) ब्राचड़

यह अपभ्रंश की पूर्वजा प्राकृत मानी जाती है। इस प्राकृत के सम्बन्ध में विशेष ज्ञात नहीं है।

• 'प्राकृत' की कुछ सामान्य विशेषताएँ

1. ध्वनि की दृष्टि से प्राकृत भाषाएँ पालि के पर्याप्त निकट है।

2. पालि में उत्ष्मों में केवल 'स' का प्रयग था। प्राकृत में पिशाचोत्तरी क्षेत्र में श, ष, स तीनों ही कुछ काल तक थे।

पालि का प्रभाव बहुत से शब्दों पर है !

3. 'न' का विकास 'ण' के रूप में हुआ है।

4. ध्वनियों का विशेष विकासक्रम हुआ है।

उदा :- मूकः – मूगों।

सागर - सा अर।

मुख- मुह।

कथा – कहा।

5. प्राकृत भाषाओं में व्यंजनांत शब्द प्रायः नहीं हैं।

6. द्विवचन के रूपों का प्रयोग नहीं मिलता।

7. वैदिकी और संस्कृत संयोगात्मक भाषाएँ थीं। लेकिन प्राकृत अयोगात्मक या वियोगात्मक की ओर तेजी से बढ़ने लगी।

3.6. अपभ्रंश भाषा

1. अपभ्रंश भाषा का उद्गम

तृतीय प्राकृत में 'अपभ्रंश' भाषा आती है। अपभ्रंश का अर्थ है – 'गिरा हुआ', 'बिगडा हुआ।' प्राकृत की तुलना में भी जिस भाषा में ध्वन्यात्मक तथा व्याकरणिक परिवर्तन हुआ है, वह 'अपभ्रंश' या 'अवहट्ठ' (अपभ्रष्ट) भाषा के नाम से प्रचलित हुई है। अपभ्रंश प्राकृत तथा आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के बीच की कडी (Link) है। हर आधुनिक भारतीय भाषा का जन्म किसी - न - किसी अपभ्रंश से हुआ है। भाषा के अर्थ में अपभ्रंश नाम का प्रयोग छटी सदी से प्रचलित हुआ है।

2. बोलियाँ

'प्राकृत' - सर्वस्व, ग्रन्थ के अनुसार अपभ्रंश के 27 भेद माने जाते हैं। किन्तु मुख्य अपभ्रंश केकय, टक्क, ब्राचड, शौरसेनी, महाराष्ट्री, अर्धमागधी औरे मागधी मानी जाती हैं। (इन सभी बोलियों का विवरण पिछले प्रश्न के समाधान में 'प्राकृत' भाषा के अन्तर्गत दिया गया है। अगर यह प्रश्न पूछा जाय, तो उन सब का विवरण भी यहाँ देना चाहिए।) डॉ. चटर्जी के अनुसार 'खस' एक अपभ्रंश भाषा है, जो पर्वतीय क्षेत्रों में बोली जाती है। नामवर सिंह ने अपभ्रंश के दो भेद माने हैं। प्राकृतो और आधुनिक भारतीय भाषाओं के बीच की कड़ी के रूप में अपभ्रंश के 6-7 भेद माने जाते हैं।

3. अपभ्रंश की सामान्य विशेषताएँ

1. 'अ' का पूर्वी एवं पश्चिमी अपभ्रंशों में संवृत- विवृत का भेद था।

2. 'ऋ' का उच्चारण 'रि' जैसा होता था।

3. 'श' का प्रचार केवल मागधी में था।

4. 'ल' महाराष्ट्री मागधी, गुजरात, राजस्थान, बाँगडू और शौरसेनी में भी था।

5. स्वरों का अनुनासिक रूप प्रयुक्त होने लगा था।

6. संगीतात्मक स्वराघात समाप्त होकर कलात्मक स्वराघात विकसित हो चुका था।

7. अपभ्रंश एक उकार - बहुला भाषा थी।

उदा- एककु, पियासु, अगु, मूलु, जगु।

8. ध्वनि-परिवर्तन की प्रवृत्तियाँ पालि में शुरू होकर, प्राकृत में विकसित हुई थीं, उन्हीं का अपभ्रंश में और विकास हुआ।

9. य – ज, व – व, म – वँ, क्ष - क्ख या च्छ, आदि अक्षरों का ध्वनि परिवर्तन या विकास हुआ था।

10. संस्कृत प्राकृत – अपभ्रंश, तस्य-तस्स – तासु, के समीकरण में शब्दों का परिवर्तन हुआ।

11. भाषा काफी वियोगात्मक हुई।

12. नपुंसक लिगं समाप्त हो गया।

13. कारकीय आदि रूपों की कम हो गयी।

4. अवहट्ठ

कुछ विद्वानों के अनुसार अपभ्रंश और आधुनिक भाषाओं के बीच की कडी 'अवहट्ठ' कहलाती है। लेकिन डॉ. भोलानाथ तिवारी का कथन है – "मूलतः संस्कृत से भ्रष्ट हुई भाषा 'अपभ्रंश' शब्द का विकास 'अवहंस' रूप में हुआ और 'अपभ्रष्ट' का विकास 'अवहट्ठ' रूप में हुआ था। अतः 'अपभ्रंश' और 'अवहट्ठ' एक ही भाषा के दो नाम हैं।"

5. अपभ्रंश से उत्पन्न आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का उद्भव विभिन्न क्षेत्रीय अपभ्रंश भाषाओं से हुआ था।

अपभ्रंश **आधुनिक भाषाएँ तथा उपभाषाएँ**

1. शौरसेनी - पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, पहाडी, गुजराती।

2. - केकय – लहँदा।

3. टक्क- पंजाबी।

4. ब्राचड – सिंधी।

5. महाराष्ट्री- मराठी।

6. मागधी - बिहारी, बंगाली, उड़िया, असमिया।

7. अर्धमागधी - पूर्वी हिन्दी।

इस प्रकार हिन्दी भाषा का उद्भव अपभ्रंश के शौरसेनी, मागधी, तथा अर्धमागधी रूपों से हुआ था।

3.7. सारांश

हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास 10 वीं शताब्दी से लेकर आधुनिक काल तक आते-आते अनेक प्राचीन, देशी, विदेशी बोलियों के प्रभाव से दिन-ब-दिन बढ़ती आई है। हिन्दी भाषा पर प्राचीन संस्कृत पाली, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का अधिक विशेष भूमिका रहा। आज हिन्दी भाषा का क्षेत्र विस्तृत हुआ है। अनेक बोलियों से हिन्दी भाषा का शब्दभंडार विस्तृत बन गया है।

3.8. बोध प्रश्न

1. हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास क्रम को बताइए।

2. संस्कृत भाषा पर टिप्पणी लिखिए।

3. हिन्दी भाषा पर पाली, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का प्रभाव के बारे में चर्चा कीजिए।

3.9. सहायक ग्रंथ

1. हिन्दी भाषा – डॉ. भोलानाथ तिवारी।

2. आधुनिक भाषा विज्ञान - भोलानाथ तिवारी।

3. हिन्दी भाषा के इतिहास - डॉ. धीरेन्द्र वर्मा।

डॉ. एम. मंजुला

4. हिंदी भाषा का स्वरूप और हिन्दी की भूमिकाएँ

4.0. उद्देश्य

पिछले इकाइयों में हम संसार की भाषाओं का ऐतिहासिक क्रम, वर्गीकरण के साथ-साथ हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त किये हैं। इसके अलावा हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं और भारतीय भाषाओं को पाश्चात्य विद्वानों ने किस प्रकार वर्गीकरण किये इनका पूर्ण ज्ञान प्राप्त किये हैं। अब हम इस इकाई में हिंदी भाषा स्वरूप तथा हिन्दी की बोलियों का चर्चा करेंगे, जिससे आप हिंदी भाषा का स्वरूप और बोलियों का विस्तृत जानकारी प्राप्त होगी।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- हिंदी भाषा के स्वरूप को समझ सकेंगे;
- हिन्दी और हिन्दी की विविध उपभाषाओं को जानेंगे;
- हिन्दी के विविध क्षेत्रीय रूप को जानेंगे; और
- हिन्दी भाषा का स्वरूप और बोलियों का भर पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर पायेंगे।

रूपरेखा

4.1. प्रस्तावना

4.2. हिंदी भाषा: स्वरूप और भूमिकाएँ

4.3. हिंदी भाषा का स्वरूप

- 4.3.1. हिंदी और हिंदी की विविध उपभाषाएँ
- 4.3.2. विविध क्षेत्रों में हिन्दी का रूप
- 4.3.3 हिंदी, उर्दू और हिन्दुस्तानी का प्रश्न

4.4. हिन्दी भाषा की भूमिका

- 4.1. संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी
- 4.2. राजभाषा के रूप में हिन्दी
- 4.3. प्रयोजनमूलक भाषा के रूप में हिन्दी
- 4.4. अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में हिन्दी

4.5. सारांश

4.6. बोध प्रश्न

4.7. सहायक ग्रंथ

4.1.प्रस्तावना

हिंदी भाषा क्या है, उसका स्वरूप, क्षेत्र, विस्तार और सांस्कृतिक विरासत क्या है? जिसे हम हिंदी भाषा कहते हैं, उसका भाषायी स्वरूप क्या है? यह तो आप जानते हैं कि अंग्रेज़ों की भाषा अंग्रेजी है, फ्रांसीसियों की फ्रेंच, महाराष्ट्र की भाषा मराठी है और पंजाब की पंजाबी हिंदी किसकी भाषा है? हिंदी प्रदेश की या हिंदुस्तान की? आप यह भी जानते ही हैं कि हिंदी प्रदेश भी निश्चित रूप से परिभाषित नहीं किया जा सकता। पश्चिम में राजस्थान से लेकर पूरब में बंगाल की सीमा तक कई राज्यों में हिंदी भाषा बोली जाती है। लेकिन इन प्रदेशों में आम आदमी अपनी-अपनी बोलियों का भी व्यवहार करते हैं। क्या वे बोलियाँ ही उनकी अपनी भाषा है? फिर हिंदी का अपना स्थान क्या है? अकसर हिंदी के विद्वानों के सामने कुछ जटिल प्रश्न उपस्थित होते हैं - हिंदी क्या है, उसका मानक स्वरूप क्या है, उसका क्षेत्र कौन-सा है, उसके बोलने वाले कौन लोग हैं आदि। इन प्रश्नों के उत्तर में कुछ व्यावहारिक उत्तर भी दिए जाते हैं।

वही हिंदी है जिसके माध्यम से यह पुस्तक लिखी गई है, या जिस भाषा में हम फिल्में देखते हैं अथवा दूरदर्शन के कार्यक्रम देखते हैं; वही हिंदी है, जिसमें साहित्य रचना होती है और जिसमें लोग पत्र-पत्रिकाएँ तथा अखबार पढ़ते हैं; वही हिंदी है जिसमें लोग रेलगाड़ियों में सफर करते हुए एक-दूसरे से बात करते हैं या जिसके माध्यम से सेना के जवान आपस में बातचीत करते हैं; वही हिंदी है जिससे राजनेता जनता को संबोधित करते हैं या व्याख्याता मंच से भाषण देते हैं। इस विवरण को इसी तरह और बढ़ाया जा सकता है और अन्य कई कोटियों का उल्लेख किया जा सकता है, जहाँ लोग इस भाषा के माध्यम से विचार-विमर्श करते हैं।

हिंदी में एकरूपता का सवाल उठाया जा सकता है। हम देखते हैं कि फिल्मों में कभी अरबी-फारसी के शब्दों से पूरित शैली दिखाई पड़ती है, कभी बंबई या हैदराबाद की बोली का पुट दिखाई पड़ता है। कुछ फिल्मी गाने भी संस्कृतनिष्ठ शैली में लिखे जाते हैं। इसी तरह, जब व्याख्याता भाषण देते हैं तो उनकी भाषा में उनकी अपनी बोली के उच्चारण, शब्द या व्याकरणिक संरचना की विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं। हिंदी भाषा के स्वरूप में जो विविधता है, उसी के संदर्भ में मानक हिंदी का सवाल उठाया जाता है। कभी-कभी इस पर भी प्रश्न चिह्न लगता है कि हिंदी का अपना स्वरूप या क्षेत्र है भी या नहीं।

4.2. हिंदी भाषा: स्वरूप और भूमिकाएँ

हिंदी भाषा की अवधारणा को समझने के लिए हमें यह जानना होगा कि उसके विविध रूप कौन-कौन से हैं, उन विविध रूपों का प्रयोग कहाँ और किस-किस तरह से होता है और इन विविध रूपों का हिंदी भाषा से किस प्रकार का संबंध है। जैसा कि हमने पहले उल्लेख किया था, किसी भाषा में सात-आठ बोलियाँ हों तो उस भाषा को हम फिर भी एक भाषा ही मानते हैं। बोलियाँ मात्र भाषा के विविध रूप हैं। हिंदी का स्वरूप अन्य भाषाओं की तुलना में अलग प्रकार का है। एक तरफ इसमें मानक हिंदी और बोलियों का सवाल है, दूसरी तरफ भारत में हिंदी के विविध क्षेत्रीय रूपों का प्रश्न है। क्षेत्र विस्तार के कारण इन विविध रूपों में भिन्नता का होना स्वाभाविक है, सहज है। विविध रूपों के प्रश्नों के साथ-साथ हिंदी, उर्दू और हिन्दुस्तानी का सवाल भी उठता है। क्या हिंदी और उर्दू दो अलग भाषाएँ हैं? भाषा वैज्ञानिक स्तर पर शायद कह सकते हैं कि हिंदी और उर्दू दो अलग भाषाएँ नहीं हैं। इन दोनों रूपों में इतना भी अंतर नहीं है, जितना कि किसी भाषा की बोलियों में होता है।

फिर भी, सांस्कृतिक-सामाजिक कारणों से ये अलग भाषाएँ मानी जाती हैं। फिर हिंदुस्तानी का स्थान क्या है? क्या यह हिंदी और उर्दू, दोनों का मिश्रित रूप है? या क्या यह इन दोनों से भिन्न एक तीसरा रूप है, जिसे हम हिंदुस्तानी भाषा कहें। अगर हम इन प्रश्नों पर विचार कर सकें तो बता सकते हैं कि हिंदी भाषा क्या है, एक भाषा या अनेक भाषाओं का समूह ? जिस तरह स्वरूप के कारण भाषा में विविधता आती है, उसी प्रकार विभिन्न भूमिकाओं के कारण भाषा के विभिन्न नाम हो जाते हैं। क्या बोलचाल की हिंदी और राजभाषा हिंदी, हिंदी भाषा की दो शैलियाँ हैं या दो भिन्न प्रकार की भाषाएँ हैं? इन सब भूमिकाओं के अध्ययन को हम अगर भाषा की सामाजिक आवश्यकताओं से जोड़कर देखें तो कह सकते हैं कि ये भूमिकाएँ सामाजिक संरचना से पैदा होती हैं और भिन्न भूमिकाओं में भाषा की भिन्न शैलियाँ काम आती हैं। इस इकाई में हम हिंदी भाषा के स्वरूप और भूमिकाओं के बारे में अध्ययन करेंगे और देखेंगे कि विभिन्न नामों से अभिव्यक्त हिंदी वास्तव में कौन-सी है? हिंदी भाषा की अवधारणा को हम इन्हीं संकल्पनाओं के माध्यम से अच्छी तरह से समझ सकते हैं।

4.3. हिंदी भाषा का स्वरूप

समाज में भाषा के विविध रूप होते हैं यानी ग्रामीण भाषा, शहरी भाषा, बोली और मानक भाषा आदि भाषा के विविध सामाजिक भेदों के कारण उत्पन्न विभिन्न भाषा के रूप हैं। भाषा की विभिन्नता हर समाज की विशेषता है। यह कहना गलत नहीं है कि सभी जीवंत भाषाओं में भिन्न-भिन्न भाषिक रूप होते हैं। इन भाषिक रूपों के संदर्भ में हम यह जानना चाहेंगे कि भाषा और इन रूपों का किस प्रकार का संबंध है। आगे हम हिंदी भाषा के स्वरूप के संदर्भ में तीन प्रमुख मुद्दों पर विचार करेंगे।

4.3.1. हिंदी और हिंदी की विविध उपभाषाएँ

हम जिसे हिंदी भाषी क्षेत्र कहते हैं उसमें सभी प्रदेशों में लोगों की अपनी-अपनी बोलियाँ या उपभाषाएँ अलग-अलग होते हैं। ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मारवाड़ी, मेवाड़ी, हरियाणवी, मगही, छत्तीसगढ़ी, मैथिली, कुमाऊँनी, गढ़वाली आदि हिंदी की उपभाषाएँ हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि हिंदी भाषा का अपना कोई प्रदेश नहीं है। कुछ महानगरों में कुछ परिवार ऐसे हैं जहाँ की नई पीढ़ी के लोग बोली से परिचित नहीं होते और बचपन से मातृभाषा के रूप में हिंदी का अर्जन करते हैं। लेकिन ऐसे लोगों की संख्या कम है। सवाल यह है कि हिंदी बोलियों / उपभाषाओं का परस्पर संबंध क्या है, क्या हिंदी भाषा और बोली / उपभाषाएँ भिन्न-भिन्न भाषाएँ हैं, किस स्थिति में बोली / उपभाषा कोही व्यक्ति की मातृभाषा कहा जाए और हिंदी उसके लिए दूसरी भाषा हो ? इस प्रश्न संबंध में कई मुद्दे सामने आते हैं।

अगर हम दक्षिण में हिंदी की पाठ्यचर्या तैयार करते समय कुछ विद्वान यह कहते हैं कि मध्यकालीन हिंदी भाषा का साहित्य (सूर तुलसी आदि का साहित्य) न पढ़ाया जाए क्योंकि इन भाषाओं के माध्यम से पढ़ने में कठिनाई आती है। इसी संदर्भ में विद्वान यह भी मानते हैं कि सूर का साहित्य या तुलसी का साहित्य किसी बोली का साहित्य नहीं है, वह हिंदी साहित्य का ही अभिन्न अंग है। जब हम हिंदी साहित्य की चर्चा करते हैं तो उसमें सूर, तुलसी, बिहारी, केशवदास, नानक आदि कवियों के लेखन को साहित्यिक विकास के संदर्भ में देखते हैं। इन लेखकों के साहित्य को अलग करके हिंदी को देखा ही नहीं जाता।

हिंदी भाषा का स्वरूप और भूमिकाएँ 'रीतिकाल' तक हिंदी के अलग-अलग भाषा रूपों और स्थानीय भाषाओं में ही साहित्य रचा गया था और आज भी कई साहित्यकार हिंदी के अलग-अलग भाषा रूपों और स्थानीय भाषाओं में

साहित्य रचना करते हैं। जिसे हम खड़ी बोली कहते हैं, उसका साहित्य आधुनिक काल से ही शुरू होता है लेकिन यह कोई नहीं कहता कि हिंदी साहित्य का उद्भव सिर्फ आधुनिक काल में ही हुआ। हिंदी भाषा-भाषी क्षेत्र में कई बोलियाँ / उपभाषाएँ प्रचलित हैं। रचनाकारों ने साहित्य रचना के लिए कभी किसी बोली को चुना तो किसी और काल में किसी और बोली को। 'आदिकाल' के कवियों ने राजस्थान में काव्य रचना की 'मध्यकाल' में भक्ति साहित्य ब्रज और अवधी, दोनों में लिखा गया। कुछ लेखकों ने बोली के इस बंधन को भी तोड़ा और कई बोलियों से शब्द आदि ग्रहण करते हुए साहित्य रचना की। जैसे कबीर के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने सधुक्कड़ी भाषा (मिली-जुली भाषा) में लिखा।

साहित्यकार का उद्देश्य अपनी बात को अधिक प्रभावी ढंग से जनता तक पहुँचाना है, चाहे उसके लिए किसी भी स्थानीय भाषा या बोली का उपयोग करें। इस तरह हम कह सकते हैं कि हिंदी साहित्य की संपदा में लोगों ने अपनी-अपनी बोली / स्थानीय भाषा के माध्यम से योगदान किया। भाषा और बोली का प्रश्न (या उनके अलगाव का प्रश्न) आधुनिक युग में ही अधिक प्रबल हुआ है। इसके दो कारण थे। एक तो विदेशी भाषा वैज्ञानिकों ने केवल भाषिक आधार पर बोलियों का वर्गीकरण किया और उन्हें उपभाषाओं में बाँटा। ऐसे भाषा वैज्ञानिकों के कारण राजस्थान की बोलियों को राजस्थानी भाषाएँ नाम दिया गया और पूर्वी हिंदी तथा पश्चिमी हिंदी को दो भिन्न वर्गों में रखा गया। इस प्रकार के वर्गीकरण के कारण यह भावना उत्पन्न हुई कि बोलियों / उपभाषाओं का स्वतंत्र अस्तित्व है।

बोलियाँ अपने में महत्वपूर्ण हैं और उनकी अपनी अस्मिता है, इससे इनकार नहीं कर सकते। लेकिन एक भाषा क्षेत्र के रूप में हिंदी भाषा क्षेत्र को मानकर अपनी बोली को महत्व देने की अपेक्षा कहीं-कहीं यह प्रवृत्ति दिखायी पड़ती है कि बोली को अलग भाषा का दर्जा प्रदान किया जाए और हिंदी को उनसे अलग माना जाए। आधुनिक हिंदी भाषा खड़ी बोली का परिवर्धित, मानक रूप है। खड़ी बोली आज भी दिल्ली के उत्तर में मेरठ, सहारनपुर आदि जिलों में बोली जाती है। इसीलिए पहले भाषा वैज्ञानिक हिंदी को 'खड़ी बोली हिंदी' भी कहते थे। लेकिन आधुनिक हिंदी खड़ी बोली से कहीं अधिक सुसंस्कृत और समृद्ध भाषा का रूप धारण कर चुकी है। इसलिए खड़ी बोली के प्रश्न से हिंदी भाषा के प्रश्न को अलग करके देखना होगा। दोनों की भूमिकाएँ अलग हैं, अब दोनों के स्वरूप में काफी अंतर है। हमने ऊपर जिक्र किया था कि हिंदी भाषी प्रदेश राजस्थान से बिहार तक फैला हुआ है।

भाषिक रचना की दृष्टि से देखें तो राजस्थानी, गुजराती भाषा के अधिक निकट है, पूर्व की मैथिली भाषा की रचना बांगला से अधिक मिलती है। यद्यपि आधुनिक युग में राजस्थानी, भोजपुरी, मैथिली आदि प्रादेशिक भाषाओं में समृद्ध साहित्य की रचना हो रही है, हिंदी साहित्य ही इस प्रदेश की साहित्य रचना का प्रमुख आधार रहा है। इन प्रदेशों में प्रायः हिंदी भाषा ही शिक्षा प्राप्ति का प्रमुख माध्यम भी रही है। इस दृष्टि से कह सकते हैं कि भाषा और बोली के अंतःसंबंधों की व्याख्या और विवेचन कठिन है, उलझा हुआ प्रश्न। इसे मात्र भाषा वैज्ञानिक आधार पर ही सुलझा नहीं सकते। हिंदी भाषा संरचना की दृष्टि से गुजराती या पंजाबी के अधिक निकट है। लेकिन ऐतिहासिक कारणों से ये भिन्न भाषाएँ मानी गई हैं और आज कोई हिंदी और पंजाबी को एक भाषा नहीं कहता। इसी तरह उपभाषाओं / बोलियों / स्थानीय भाषाओं में संरचना, शब्दावली आदि के अंतर के बावजूद साहित्यिक और सांस्कृतिक विरासत के कारण सारे क्षेत्र एक भाषाई क्षेत्र माने जाते हैं। यों कह सकते हैं कि इन सब बोलियों / उपभाषाओं का अपना महत्व है, अपनी अस्मिता है।

खड़ी बोली से उद्भूत हिंदी भाषा इस विशाल भाषा क्षेत्र को जोड़ने वाली कड़ी है, इन सब क्षेत्रों की सामान्य धरोहर है। बोलियों और हिंदी भाषा की अपनी-अपनी अहम भूमिकाएँ हैं। शिक्षा और साहित्य रचना हिंदी के साथ

बोलियों के माध्यम से भी हो सकती है। लेकिन हिंदी भाषा का एक अखिल भारतीय स्वरूप है, एक अंतर्राष्ट्रीय भूमिका है, देश की राजभाषा के रूप में उसकी अपनी विशिष्ट भूमिका है। हिंदी की इन अन्य भूमिकाओं के बारे में हम आगे के प्रकरणों में पढ़ेंगे।

4.3.2. विविध क्षेत्रों में हिन्दी का रूप

हिंदी भाषा इस देश की जन संपर्क की भाषा रही है। इसलिए हिंदी का हिंदी भाषी प्रदेशों के बाहर भी उपयोग होता है। इसके कई ऐतिहासिक और सामाजिक कारण हैं। 13वीं शताब्दी के आसपास दक्षिण में हैदराबाद में गुलाम वंश की स्थापना हुई और आधुनिक युग तक विभिन्न मुस्लिम शासकों ने हैदराबाद पर शासन किया। इसी कारण हैदराबाद में शुरू में दक्कनी हिंदी का प्रचलन हुआ और आधुनिक युग तक उर्दू (या बोलचाल की हिंदुस्तानी) जन सामान्य के संपर्क की भाषा रही।

इसी तरह दक्षिण में अन्य कई स्थानों पर नवाबों और सुल्तानों के आधिपत्य के कारण उर्दू का प्रचलन रहा। इसी कारण, आंध्र प्रदेश तथा कर्नाटक में उर्दू जनसामान्य के संपर्क का माध्यम रही और उर्दू के परिचय के कारण हिंदी भाषा के प्रयोग को बल मिला। कलकत्ता और बंबई जैसे महानगरों में हिंदी भाषी क्षेत्र से जाकर बसे लोगों के कारण हिंदी भाषा के प्रयोग को विस्तार मिला। इस तरह हिंदी के विशिष्ट स्थानीय रूप हैं। ये स्थानीय रूप बोलचाल की भाषा के हैं, वहाँ की शिक्षण संस्थाओं और साहित्यिक लेखन में परिनिष्ठित मानक हिंदी का ही प्रयोग मिलता है। हैदराबाद की हिंदी पर तेलुगु का पुट दिखाई पड़ता है और बंबइया हिंदी पर मराठी का।

हैदराबाद में 'मुझे चाहिए' के लिए 'मेरे को होना', 'क्या चाहिए' के लिए क्या होना आदि प्रयोग हैं। बंबई की हिंदी में इन दोनों प्रयोगें के लिए 'मेरे को माँगता', 'क्या माँगता' समान अभिव्यक्तियाँ हैं। दिल्ली हिंदी भाषा प्रदेश में है। लेकिन यहाँ की हिंदी में भी संभवतः हरियाणवी और पंजाबी के प्रभाव के कारण कई विशेषताएँ हैं। 'मैंने जाना है' ('मुझे जाना है' के लिए), माता जी आये (माता जी आई के लिए) आप आओ। (आप आइए' के लिए), लोग जाने शुरू हो गए (लोग जाने लगे के लिए), करने लग पड़ा (करने लग गया के लिए) आदि स्थानीय विशेषताएँ दिल्ली की हिंदी की विशेषताएँ हैं।

एक तरफ विद्वानों का विचार यह है कि ये स्थानीय रूप अमानक हैं, त्याज्य हैं। मानक भाषा ही वास्तविक भाषा है। दूसरी तरफ, कुछ विद्वानों का मत यह है कि बोलियाँ और हिंदी के ये स्थानीय रूप ही वास्तव में 'हिंदी भाषा' है और हिंदी भाषा का 'मानक रूप' क्लिष्ट, कृत्रिम व्यवस्था है, जिसका जनता में कोई स्थान नहीं है। ये दोनों विचार इस बात पर सहमत हैं कि हिंदी भाषा का एक बोलचाल का रूप है, जिसमें लोग परस्पर विचार-विमर्श करते हैं। उससे भिन्न एक परिनिष्ठित, साहित्यिक रूप है जो सामान्य सूत्र होते हुए भी किसी का अपना नहीं है। बोलचाल की भाषा में स्थानीय पुट मिलता है चाहे बोलियों का हो या स्थानीय भाषाओं का उसकी शब्दावली आम आदमी के दैनंदिन व्यवहार की है और वह सामान्य संपर्क का सशक्त माध्यम है। आज की हिंदी का हिंदी-भाषी प्रदेशों में भी एक जैसा स्वरूप नहीं है। हिंदी बोलने वाले स्थानीय व्यक्ति अपनी बोली का उच्चारण की विशेषताओं और बोली की शब्दावली प्रयोग के कारण हिंदी के विविध रूपों को जन्म देते हैं।

इन विविध रूपों को ही अकसर बोलचाल की हिंदी की संज्ञा दी जाती है। उपर्युक्त आधार पर हिंदी के दो रूप माने जाते हैं - सामान्य बोलचाल की भाषा और परिनिष्ठित साहित्यिक भाषा। इनमें कुछ हद तक अलगाव की स्थिति की भी कल्पना की जाती है। बोलचाल की भाषा स्थानीय प्रयोगों से युक्त, स्थानीय उच्चारण और हिंदी भाषा का स्वरूप

और भूमिकाएँ शब्दावली से प्रभावित रूप है, जो जनसाधारण के बीच संपर्क का सूत्र है। परिनिष्ठित, साहित्यिक भाषा का एक मानक रूप है, जिसकी अपनी विशिष्ट शब्दावली है और समाज के उच्च वर्गों के संप्रेषण की भाषा है। हम आगे के प्रकरणों में इस संदर्भ में और विचार करेंगे। बोलचाल और मानक भाषा संबंधी पिछले प्रकरण में हमने चर्चा की कि स्थानीय विविधताओं के बावजूद बोलचाल की हिंदी का एक रूप है। अब हम इन दोनों विचारधाराओं में एक समानता देख सकते हैं।

हिंदुस्तानी बोलचाल की भाषा है, हिंदी मानक भाषा है। इस दृष्टि से हिंदुस्तानी का कोई अलग अस्तित्व नहीं है। हर भाषा में बोलचाल का रूप और साहित्यिक (या मानक) रूप विद्यमान होते हैं। इन्हें दो अलग भाषाओं की संज्ञा नहीं दी जाती। क्षेत्रीय आधारों पर भाषा की अनेकता के इस प्रकरण को समाप्त करते हुए देखें कि हिंदी की अस्मिता क्या है, इसका स्थान कहाँ है। अगर हम सांस्कृतिक दृष्टि से 'अनेकता में एकता' की बात करते हैं तो भाषिक दृष्टि से भी 'अनेकता में एकता' का स्वरूप ढूँढ सकते हैं कि यह भाषा लगभग 250 वर्षों से देश में संपर्क की भाषा रही है और देश की एक प्रमुख भाषा के रूप में अपना स्थान बना चुकी है। जन-जीवन के विभिन्न धरातलों पर, विभिन्न भूमिकाओं में इसका अपना महत्व है। बोलियाँ, स्थानीय रूप तथा बोलचाल का स्वरूप इसकी अपनी शक्ति है, इसके पूरक नहीं। आज यह भाषा जिन भूमिकाओं का वहन कर रही है, उनसे यह एक विकासशील, आधुनिक राष्ट्र के निर्माण में सहयोग देने वाली समक्ष माध्यम के रूप में उभर रही है।

4.3.3. हिंदी, उर्दू और हिन्दुस्तानी का प्रश्न

हिंदी और उर्दू का फर्क मूलतः लिपि और शब्दावली को लेकर है। उर्दू में जहाँ अरबी-फारसी शब्दों की बहुलता है वहीं हिंदी में संस्कृत शब्दों का ज्यादा प्रयोग दिखाई पड़ता है। परंतु भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से इन्हें दो अलग-अलग भाषाएँ मानने दिक्कत महसूस होती है। हिंदी और उर्दू का उत्स एक है और दोनों ही समान क्षेत्र की भाषाएँ भी हैं। इन थोड़े से अंतरों के अलावा हिंदी और उर्दू में कोई खास भेद नहीं है। अगर कोई व्यक्ति कहे कि 'मैं प्रयत्न करूँगा' तो वह हिंदी है और कहे कि 'मैं कोशिश करूँगा' तो वह उर्दू है, अधिक तर्कसंगत बात नहीं लगती। भाषाओं में एक ही अर्थ के कई पर्याय मिलते हैं। जैसे संस्कृत में भी कमल, पंकज, जलज, नीरज आदि अनेक शब्द मिलते हैं। 'कोशिश' और प्रयत्न इस दृष्टि से एक अर्थ के दो पर्याय माने जाएँगे और पर्यायों के कारण दो भाषाएँ स्थापित नहीं हो जाती। अंग्रेज़ी में भी try, attempt, endeavuour, venture आदि पर्यायवाची शब्द एक ही अर्थ देते हैं लेकिन इन पर्यायों के कारण अंग्रेजी की न तो विविध शैलियाँ मानी जाती हैं और न ही उस भाषा के एक से अधिक रूप गिनाए जाते हैं।

हिंदी और उर्दू के प्रश्न की तरह एक और प्रश्न हमारे सामने आता है- हिंदुस्तानी का। जिसे हम आज हिंदी भाषा कहते हैं इसे स्वतंत्रता-संग्राम के जमाने में आम बोलचाल में हिंदुस्तानी कहा जाता था। लोगों ने इस सामान्य बोलचाल की भाषा को, जो उस समय देश के विविध क्षेत्रों के लोगों के बीच संपर्क की भाषा थी, हिंदुस्तानी कहा। यह भी विवाद का विषय है कि क्या उस समय विद्वान साहित्यिक भाषा हिंदी से अलग बोलचाल की भाषा हिंदुस्तानी की बात कहते थे या हिंदी को ही हिंदुस्तानी नाम से पुकारते थे। यह उल्लेखनीय कि संविधान सभा में भाषा से संबंधित अनुच्छेदों को अंतिम रूप देने के लिए जो चर्चा हुई उसमें यह प्रश्न सामने आया कि इसे हिंदी कहें या हिंदुस्तानी। इतिहास साक्षी है कि इस नाम के संदर्भ में भी मतदान हुआ था और एक मत हिंदुस्तानी की जगह 'हिंदी' शब्द को अपनाने का निर्णय किया गया।

तब से अब तक यह भी एक सवाल हम लोगों के सामने बार-बार उठता है कि क्या हिंदी और हिंदुस्तानी दो अलग-अलग रूप हैं और अगर हैं तो उनके संदर्भ में हमारी क्या नीति होनी चाहिए? कई विद्वानों का यह मत है कि हिंदी साहित्यिक भाषा है और साहित्य में इसका उपयोग किया जाता रहना चाहिए, जबकि हिंदुस्तानी आम बोलचाल की भाषा है जिसमें अरबी-फारसी के आम फहम शब्द होंगे। लोगों की यह धारणा है कि संस्कृतनिष्ठ शब्द विद्वत चर्चा के और ज्ञान - विज्ञान के शब्द हैं तथा इन शब्दों का उपयोग भाषा को कठिन बनाता है, जबकि प्रचलित उर्दू शब्दों से भाषा थोड़ी सरल हो जाती है। इसलिए आम जनसंपर्क के लिए यही सरल रूप उपादेय है। इस तर्क के संदर्भ में भी मतभेद हो सकते हैं। हिंदी भाषी क्षेत्र और पंजाबी तथा उर्दू जानने वालों के लिए उर्दू की शब्दावली भले ही अधिक परिचित लगे, लेकिन किसी मलयालम भाषी के लिए या बांगला भाषी के लिए भी संस्कृत शब्दों का प्रयोग भाषा को अधिक बोधगम्य बनाता है। इसी तरह तेलुगु या कन्नड़ भाषा - भाषियों के लिए संस्कृतनिष्ठ हिंदी भाषा अधिक कठिन नहीं लगेगी। अखिल भारतीय स्तर पर सरल, बोधगम्य भाषा क्या हो इस पर हम कोई निश्चित राय नहीं दे सकते।

हिंदी भाषा की विविधता का एक आयाम हिंदी, उर्दू, हिंदुस्तानी का है। जहाँ तक हिंदी और उर्दू का प्रश्न है, यह सत्य है कि इन्हें दो भाषाओं का दर्जा मिल चुका है, भले ही भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से इनमें अंतर नहीं है। इनकी साहित्यिक परंपरा भिन्न है और भिन्न ही रही है इससे भी इनकार नहीं किया जा सकता। कहने का तात्पर्य यह है कि हिंदी और उर्दू इस तरह हिंदी भाषा की विविधता का एक आ हिंदी, उर्दू, हिंदुस्तानी का है। जहाँ तक हिंदी और उर्दू का प्रश्न है, यह सत्य है कि इन्हें दो भाषाओं का दर्जा मिल चुका है, भले ही भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से इनमें अंतर नहीं है। इनकी साहित्यिक परंपरा भिन्न है और भिन्न ही रही है इससे भी इनकार होने का आधार भाषा वैज्ञानिक कम है, सामाजिक-सांस्कृतिक अधिक है।

जहाँ तक हिंदी और हिंदुस्तानी का सवाल है इन्हें हिंदी भाषा की दो शैलियाँ मान सकते हैं, लेकिन यह ऐसी दो विशिष्ट शैलियाँ नहीं होंगी कि इन्हें हम अलग नामों से पहचानें। भाषा के शब्द बदलते रहते हैं, भाषा की बोधगम्यता का स्तर भी बदलता रहता है। कुछ अरबी-फारसी शब्द, जो किसी ज़माने में अधिक उपयोग में आते थे अब उतने प्रचलित या परिचित नहीं हैं। जो संस्कृत शब्द शुरू में कठिन लगते थे अब प्रचलन के कारण अधिक बोधगम्य हो गए हैं। यह भी द्रष्टव्य है कि जहाँ तक अरबी-फारसी शब्द के प्रयोग का सवाल है, हर लेखक अपने-अपने ढंग से उनका अनुपात निश्चित करता है। कोई बहुत कम अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग करता है, किसी में इतने अधिक अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग करता है, किसी में इतने अधिक अरबी-फारसी शब्द आते हैं कि उसकी भाषा को उर्दू ही कहा जाता है, भले ही वह देवनागरी में लिखी गई हो। इस कारण शब्दों के प्रयोग में विभिन्न प्रकार के अनुपात होने के कारण हम हिंदी और हिंदुस्तानी नाम की दो विशिष्ट शैलियाँ गिना नहीं सकते। हमें मानना होगा कि हिंदी भाषा की विविध शैलियों में शैली भेद उत्पन्न करने का अधिक आधार है अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग, संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग।

4.4 हिंदी भाषा की भूमिकाएँ

हिंदी भाषा की अवधारणा को समझने के लिए हम दो संकल्पनाएँ लेकर चले हैं। एक तरफ भाषा के स्वरूप और समाज में प्रयोग के संदर्भ में हम यह जानना चाहेंगे कि विभिन्न स्थितियों में उपयोग के कारण किस प्रकार भाषा के साथ विभिन्न शब्द जुड़ जाते हैं और इन शब्दों को हम संदर्भ के अनुसार ग्रहण करें तो कुल मिलाकर भाषा के मूल स्वरूप को समझ सकते हैं अर्थात् हिंदी भाषा एक है लेकिन सामाजिक-सांस्कृतिक कारणों से इसमें विविधता आई है। इस भाग में हम हिंदी भाषा की भूमिकाओं की चर्चा करेंगे। विभिन्न भूमिकाओं में भाषा के विभिन्न नाम हो जाते हैं और

इनसे कुछ हद तक विविधता भी पैदा हो जाती है। उदाहरण के लिए कुछ विद्वानों का अब भी यह मत है कि परिनिष्ठित, साहित्यिक (और साथ ही क्लिष्ट) भाषा रूप हिंदी की राजभाषा का रूप होगा और हिंदी का अखिलभारतीय रूप वास्तव में वह रूप होगा, जिसे हिंदुस्तानी कहा जा सकता है।

हर भाषा में हम भाषा की विभिन्न भूमिकाएँ देखते हैं। हर आधुनिक भाषा की ज्ञान-विज्ञान की भाषा के रूप में वर्तमान युग में अहम भूमिका है। विज्ञान की भाषा या विधी भाषा प्रायः कठिन हुआ करती है क्योंकि इसकी शब्दावली पारिभाषिक होती है और इसकी वाक्य संरचना में बहुत से रूढतत्व आ जाते हैं, लेकिन आधुनिक भाषाएँ इसे बोलचाल से भिन्न अलग भाषा रूप नहीं मानतीं। फिर हम हिंदी में अखिलभारतीय हिंदी और राजभाषा हिंदी नाम की दो भिन्न भाषाओं की चर्चा या कल्पना क्यों करें? हिंदी भाषा की चार प्रमुख भूमिकाएँ हैं। इन चारों के संदर्भ में हम इस भाग में आगे चर्चा करेंगे।

4.1. संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी

संपर्क भाषा से तात्पर्य है उस भाषा रूप से जो समाज के विभिन्न तबकों के बीच संपर्क में काम आती है। हिंदी इस दृष्टि से हिंदी क्षेत्र में बोली बोलने वाले लोगों और भारत के अन्य क्षेत्रों में भाषाएँ बोलने वालों के बीच संपर्क भाषा है। संपर्क भाषा का एक और व्यापक अर्थ भी है। शासन के विभिन्न अंगों में, पूरे देश को जोड़ने के लिए, हमने राजभाषा को अपनाया। इस प्रकार राजभाषा औपचारिक रूप में देश की संपर्क भाषा है। राजभाषा के माध्यम से ही देश के विभिन्न विधायी निकाय एक-दूसरे से संपर्क कर पाते हैं, विभिन्न न्यायालय एक समन्वित इकाई के रूप में काम कर पाते हैं और देश के विभिन्न कार्यालय एक-दूसरे से संपर्क कर पाते हैं। इस औपचारिक संपर्क भाषा को राजभाषा के नाम से अगले प्रकरण में देखेंगे। यहाँ पर हम अनौपचारिक स्तर पर संपर्क भाषा की चर्चा करेंगे। अनौपचारिक संपर्क के संदर्भ में सबसे पहले पूरे देश के लोगों के परस्पर संपर्क की बात आती है। तमिलनाडु और आंध्र प्रदेश के लोग तब तक एक-दूसरे से संपर्क नहीं कर सकते, जब तक उनके लिए एक सामान्य भाषाई माध्यम उपलब्ध न हो। या तो दोनों प्रदेशों के लोग दोनों भाषाओं का व्यवहार करें या फिर दोनों में से एक को संपर्क के लिए अपनाएँ।

अधिकतर परिस्थितियों में इस प्रकार का भाषिक संपर्क नहीं हो पाता है और एक तीसरे रूप अर्थात् देश की संपर्क भाषा को अपनाना पड़ जाता है। आपने आम तौर पर देखा होगा कि रेलगाड़ियों में, जिनमें विभिन्न भाषाभाषी सफर कर रहे होते हैं, आम तौर पर लोगों का संपर्क हिंदी के माध्यम से ही हो पाता है। देश के अन्य सुदूर प्रदेशों में भ्रमण करने वाले व्यक्ति अगर अपनी भाषा के माध्यम से संपर्क न कर सकें तो आम तौर पर अंग्रेजी या हिंदी के शब्दों से काम चलाते हैं। इस प्रकार व्यावहारिक रूप में इस समय हिंदी देश के लोगों के बीच संपर्क भाषा बनी हुई है।

विदेशों में भी, जहाँ के प्रवासी भारतीय कामकाज के लिए वहाँ की भाषा को अपनाकर अपने सांस्कृतिक वातावरण में एक साथ आते हैं हिंदी को ही संपर्क भाषा के रूप में अपनाते हैं। भाषा के लिए संपर्क भाषा बनने के लिए एक वातावरण भी चाहिए। लोग हिंदी के माध्यम से तभी संपर्क कर सकते हैं, जब उन्हें थोड़ी हिंदी आती हो। इस दृष्टि से इस शताब्दी के आरंभ से ही एक व्यापक आंदोलन चला है। स्कूली शिक्षा और स्वैच्छिक हिंदी संस्थाओं के कारण, देश के कोने-कोने में लोगों ने हिंदी सीखी और इसका प्रचार बढ़ा।

इसके अलावा, मनोरंजन के क्षेत्र में हिंदी की फ़िल्मों और फ़िल्मों के गानों का योगदान भी इतना ही महत्वपूर्ण रहा। फिल्मों का स्तर जो भी हो, पूरे भारत में जगह-जगह हिंदी की फिल्में प्रदर्शित की जाती हैं और पसंद की जाती हैं। आज दूरदर्शन अपने कार्यक्रमों के माध्यम से इस प्रकार संपर्क भाषा का व्यापक प्रचार कर रहा है। संविधान के अनुच्छेद

351 के अनुसार हिंदी देश की सामासिक संस्कृति की वाहक है। हिंदी की यह भूमिका कुछ हद तक हिंदी को राजभाषा का दर्जा प्रदान करती है। राष्ट्रभाषा वह भाषा है, जो देश को जोड़ती है, देश के विभिन्न साहित्यों और विभिन्न संस्कृतियों का माध्यम बनती है और लोग इसे मन से अपनाते हैं। हिंदी भाषा में राष्ट्रभाषा कहलाने लायक वह गुण है जो संपर्क भाषा हिंदी से पैदा हुआ है।

4.2. राजभाषा के रूप में हिन्दी

राजभाषा भी संपर्क भाषा का एक रूप है, उसका औपचारिक रूप है। हिंदी भारत की राजभाषा है, जिसका उल्लेख संविधान में किया गया है। राजभाषा की भूमिका में हिंदी, केंद्र सरकार कार्यालयों की भाषा है, राज्यों के विधानमंडलों और संसद को अभिलेखों (रिकॉर्ड्स) के स्तर पर जोड़ने वाली भाषा है, देश के कानून की भाषा है और उच्च न्यायालयों तथा उच्चतम न्यायालय को अभिलेखों के स्तर पर जोड़ने वाली भाषा है। इसलिए यह आवश्यक है कि संघ शासन के इन तीनों अंगों से जुड़े हुए व्यक्ति इस भाषा से परिचित हों और इस भाषा के माध्यम से यथासंभव काम करें। इसके लिए व्यक्तियों को प्रशिक्षण आदि दिए जाते हैं।

राजभाषा विशिष्ट कार्यक्षेत्रों की भाषा है, इसलिए इसकी शब्दावली सामान्य बोलचाल की शब्दावली से भिन्न होती है। यह लिखित कार्यक्रमों की भाषा है इसलिए इसकी भाषा में रूढ़ उक्तियाँ आती हैं। हिंदी को राजभाषा के रूप में विकसित करने के दौरान राजभाषा हिंदी का स्वरूप भी विकसित किया गया। प्रशासन, विधि आदि क्षेत्रों के लिए आवश्यक शब्द निर्मित किए गए और अनुवाद द्वारा इन शब्दों के माध्यम से नियम पुस्तिकाएँ आदि तैयार की गईं। अपने इस नए स्वरूप के कारण राजभाषा हिंदी लोगों को कठिन लगी और लोगों ने यह अनुभव किया कि यदि बोलचाल की भाषा में काम करने की आदत पड़ेगी तो यह उतनी कठिन नहीं लगेगी, लेकिन राजभाषा हिंदी नाम की कोई अलग कृत्रिम भाषा नहीं है। अगर लोग यह मानकर चलें कि क्षेत्रीय भाषा वास्तविक भाषा है और उसकी प्रकृति राजभाषा से निश्चित रूप से भिन्न होती है तो यह दृष्टि उचित नहीं। राजभाषा का स्वरूप उन लोगों के लिए है जो उस क्षेत्र में काम करते हैं; सभी व्यक्ति विधि की भाषा पढ़कर उसे उतनी ही आसानी से समझ लें, जितनी आसानी से फिल्म की पटकथा समझते हैं, यह जरूरी नहीं है।

4.3 प्रयोजनमूलक भाषा के रूप में हिन्दी

हिंदी भाषा एक जन-समुदाय की व्यवहार की भाषा है। जन-समुदाय की भाषा आमतौर पर लोगों की सामान्य आवश्यकता तक ही सीमित रहती है, जैसे खाना-पीना, रीति-रिवाज़ आदि के संदर्भ सामान्य बातचीत। आधुनिक युग में भाषा के विविध प्रयोजन होते हैं। विकसित भाषाएँ सिर्फ समाज के सामान्य सम्प्रेषण और साहित्य के निर्माण तक ही सीमित रहती हैं। विकसित भाषाएँ जीवन के विविध क्षेत्रों में काम आती हैं। इन विविध क्षेत्रों को ही हम भाषा के प्रयोजनमूलक पक्ष कहते हैं। भाषा के कुछ प्रमुख प्रयोजनमूलक क्षेत्र निम्न प्रकार से हैं-

(अ) ज्ञान - विज्ञान की भाषा / माध्यम की भाषा।

(आ) विधि की भाषा।

(इ) प्रशासन की भाषा।

(ई) विज्ञान और टेक्नोलॉजी की भाषा।

(उ) जनसंचार की भाषा, आदि।

इनमें से दो प्रयोजनों की चर्चा हमने ऊपर राजभाषा के संदर्भ में की। ये शासन के औपचारिक प्रयोजनमूलक क्षेत्र हैं। ज्ञान-विज्ञान की भाषा, विज्ञान और तकनीक की भाषा, जनसंचार की भाषा आदि अन्य प्रमुख सामाजिक प्रयोजन हैं, जिनमें भाषा विशिष्ट रूप में व्यवहार में आती है। इस प्रकार इन क्षेत्रों की भाषा के स्वरूप का अध्ययन करना भाषा के प्रयोजनमूलक रूप का अध्ययन है।

प्रयोजनमूलक भाषा की भूमिका एक युगीन आवश्यकता है। आपने देखा होगा कि बहुत से साहित्यकार स्वांतः सुखाय लिखते हैं। अर्थात् साहित्य रचना आजीविका के रूप में नहीं होती है, बल्कि लोग अपने विचारों को दूसरों तक पहुँचाने की भावना से लिखते हैं। प्रयोजनमूलक हिंदी के क्षेत्र गहरे रूप से आजीविका से जुड़े हैं। कोई पत्रकार है, जनसंचार की भाषा का अर्जन करेगा और कोई उसे विकसित करेगा। आम आदमी सिर्फ जनसंचार की भाषा से सूचना प्राप्त करने या मनोरंजन करने तक ही अपने को सीमित रखता है। इस प्रकार आधुनिक युग में भाषा के माध्यम से काम करने वाले लोगों के लिए कई द्वार खुले हैं। इस दृष्टि से प्रयोजनमूलक भाषा का प्रश्न औपचारिक भाषा का क्षेत्र है, इसके लिए इस भाषा को विकसित करना, इस क्षेत्र में लोगों को तैयार करना और भाषा के माध्यम से उन क्षेत्रों में काम को आगे बढ़ाना आदि प्रयोजनमूलक भाषा के संदर्भ में आवश्यक सोपान हैं।

वर्तमान युग में भारत की लगभग सारी भाषाएँ प्रयोजनमूलक हैं। सभी भाषाओं के माध्यम से ऊपर के सभी प्रयोजनमूलक क्षेत्रों में कार्य हो रहा है। हिंदी का प्रयोजनमूलक पक्ष और अन्य भारतीय भाषाओं की अपेक्षा अधिक विस्तृत है क्योंकि इसका संपर्क क्षेत्र काफी बड़ा है। इस कारण हिंदी को प्रयोजनमूलक भाषा के रूप में विकसित करने में अहिंदी भाषियों से सहयोग भी प्राप्त हो सकता है और अहिंदीभाषी विद्वानों ने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

4.4. अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में हिन्दी

हिंदी की एक और महत्वपूर्ण भूमिका है। यह भाषा न केवल भारत में बल्कि भारत के बाहर कई देशों में बोली जाती है। मॉरिशस, फिजी, सूरीनाम, त्रिनीडाड आदि देशों में प्रवासी भारतीय काफी संख्या में हैं। ये मूलतः भोजपुरी प्रदेश के हैं और अब भी घरों में भोजपुरी बोलते हैं। लेकिन भारत की ही तरह इन देशों में हिंदी भाषा, शिक्षा (आंशिक रूप में), जनसंचार आदि का माध्यम। अमेरिका, कनाडा, इंग्लैंड, दक्षिण अफ्रीका, सिंगापुर आदि देशों में बड़ी संख्या में भारतीय रहते हैं। ये देश विकसित हैं अतः इन देशों में इन लोगों को हिंदी के माध्यम से काम करने के कई साधन मिल जाते हैं।

पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन, रेडियो, दूरदर्शन आदि के माध्यम से कार्यक्रम, शिक्षा में और सांस्कृतिक धरातल पर हिंदी आदि क्षेत्रों में लोग हिंदी का व्यवहार करते हैं। भारत के पड़ोसी देश पाकिस्तान और नेपाल में हिंदी समझी और बोली जाती है। पाकिस्तान के लोग उर्दू बोलते हैं, लेकिन भाषिक एकता के कारण उन्हें हिंदीभाषी बखूबी समझ सकता है। इस तरह हिंदी भाषा अंतरराष्ट्रीय जगत में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसी महत्व के कारण विदेशों में लगभग 150 विश्वविद्यालयों में हिंदी के अध्ययन और अनुसंधान की व्यवस्था है।

इस अंतरराष्ट्रीय भूमिका के कारण हिंदी पर यह दायित्व है कि वह इन देशों के हिंदी बोलने वाले लोगों की सांस्कृतिक साहित्यिक आवश्यकताओं की पूर्ति के पर्याप्त अवसर दें, इन सब लोगों को हिंदी के मंच पर एकत्र करे। इस दायित्व का वहन हम लोग अभी बहुत व्यवस्थित रूप से नहीं कर पा रहे हैं। इस क्षेत्र में अगर सक्रियता से काम करें तो हिंदी भाषा सही मायने में एक अंतरराष्ट्रीय भाषा होगी।

4.5. सारांश

हिंदी के स्वरूप और हिन्दी-बोलियों की चर्चा की। हिंदी भाषा के बारे में अक्सर यह कहा जाता है कि राजभाषा हिंदी बोलचाल की हिंदी से भिन्न होगी; या मातृभाषा हिंदी के अलावा एक नई भाषा अखिल भारतीय हिंदी विकसित होगी। इन बातों से लगता है मानो ये प्रकृति में भिन्न दो भाषा रूप हों। इस इकाई में हमने यही चर्चा की है कि क्षेत्र विस्तार के साथ भाषा की विविध शैलियाँ सामने आएँगी, लेकिन मूलतः भाषा का स्वरूप एक ही होगा, उसकी प्रकृति एक होगी। इस समय हिंदी कई लोगों की मातृभाषा है, कुछ प्रदेशों के लोगों के लिए प्रथम भाषा है, जो सामान्य जीवन के क्षेत्रों में बोलियों का इस्तेमाल करते हैं। इसके विविध स्थानीय रूप भी हैं, जैसे बंबई की हिंदी, हैदराबाद की हिंदी।

ऐतिहासिक कारणों से हिंदी की संस्कृतनिष्ठ शैली भी है, अरबी-फारसी शब्दों से युक्त उर्दू शैली भी है। ये विविध रूप भाषा के विकास के लक्षण हैं, इनसे भाषा समृद्ध होती हैं। हर समाज में भाषा की कई भूमिकाएँ हो जाती हैं। हिंदी अखिल भारतीय संपर्क की भाषा है। हिंदी देश की राजभाषा है यह ज्ञान - विज्ञान के विषयों की अभिव्यक्ति का माध्यम है। यह अंतरराष्ट्रीय भाषा। हर भूमिका में भाषा में कुछ विशिष्ट लक्षण होंगे, भाषा का अपना अलग रूप होगा। जैसे राजकाज की भाषा की शब्दावली और वाक्य विन्यास उसे भाषा के अन्य रूपों से अलग करेंगे। यहाँ भी इस कथन को दुहरा लेना चाहेंगे कि भूमिका विस्तार भाषा के विकास का आधार है, इससे भाषा समृद्ध होती है।

4.6. बोध प्रश्न

1. हिंदी भाषा का स्वरूप और भूमिकाओं के बारे में लिखिए।

2. हिन्दी क्षेत्रों में हिन्दी का रूप के बारे में विस्तृत रूप में लिखिए।

3. विविध क्षेत्रों में हिन्दी की भूमिकाओं को स्पष्ट कीजिए।

4.7. सहायक ग्रंथ

1. हिन्दी की बोलियाँ- जय राम, भाषा प्रकाशन, नई दिल्ली।

2. हिन्दी का भौगोलिक विस्तार-सुनंदा पाल, भाषा प्रकाशन, नई दिल्ली।

3. हिन्दी भाषा का विकास और बोलियाँ -ज्योति मिश्र।

डॉ. सूर्य कुमारी पी.

5. हिन्दी की बोलियाँ और उपभाषाएँ

5.0. उद्देश्य

भाषा का वह रूप जो एक सीमित क्षेत्र में बोला जाए, उसे बोली कहते हैं। कई बोलियों तथा उनकी समान बातों से मिलकर भाषा बनती है। बोली का व भाषा का बहुत गहरा संबंध है। भाषा का क्षेत्रीय रूप बोली कहलाता है। अर्थात देश के विभिन्न भागों में बोली जाने वाली भाषा बोली कहलाती है और किसी भी क्षेत्रीय बोली का लिखित रूप में स्थिर साहित्य वहाँ की भाषा कहलाती है। भारत की राजभाषा हिन्दी दुनिया में दूसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। बहुभाषी भारत के हिन्दी भाषी राज्यों की आबादी 46 करोड़ से अधिक है। 2011 की जमगणना के मुताबिक भारत की 1.2 अरब आबादी में से 41.03 फीसदी की मातृभाषा हिन्दी है। हिन्दी को दूसरी भाषा के तौर पर इस्तेमाल करने वाले अन्य भारतीयों को मिला लिया जाए तो देश के लगभग 75 प्रतिशत लोग हिन्दी बोल सकते हैं। इस इकाई में हम हिन्दी भाषा की बोलियाँ और उपभाषाओं के बारे में पढ़ेंगे।

रूपरेखा

5.1. प्रस्तावना

5.2. हिन्दी की बोलियाँ

5.3. सारांश

5.4. बोध प्रश्न

5.5. सहायक ग्रंथ

5.1. प्रस्तावना

हिन्दी की अनेक बोलियाँ हैं, भारत में कुल मिलाकर 18 बोलियाँ हैं, जिनमें अवधी, ब्रभाषा, कन्नौजी, बुंदेली, बघेली, हड़ौती, भोजपूरी, हरयाणवी, राजस्थानी, छत्तीसगड़ी, मालवी, नागपुरी, खोरठ, पंटपरगानिया, कुमाउँनी और मगही आदि प्रमुख हैं। इनमें से कुछ में अत्यंत उच्च श्रेणी के साहित्य की रचना हुई है। ऐसी बोलियों में ब्रजभाषा और अवधी प्रमुख हैं। यह बोलियाँ हिन्दी की विविधता हैं और उसकी शक्ति भी। वे हिन्दी की जड़ों को गहरा बनाती हैं। हिन्दी की बोलियाँ और उन बोलियाँ हैं, जो न केवल अपने में एक बड़ी परंपरा, इतिहास, सभ्यता को समेटे हुए हैं वरन स्वतंत्रता संग्राम, जनसंघर्ष, वर्तमान के बाजारवाद के खिलाफ भी उसका रचना संसार सचेत है।

हिन्दी और इसकी बोलियाँ सम्पूर्ण भारत के विविध राज्यों में बोली जाती हैं। भारत और अन्य देशों में भी लोग हिन्दी बोलते, पढ़ते और लिखिते हैं। फिजी, मॉरिशस, गयाना, सूरीनाम, नेपाल और संयुक्त अरब अमीरात की जनता भी हिन्दी बोलती है। इस इकाई में हम हिन्दी क्षेत्र तथा बोलियों के बारे में विस्तृत रूप में चर्चा करेंगे।

5.2. हिन्दी क्षेत्र तथा बोलियाँ

हिन्दी क्षेत्र की दृष्टि से हिन्दी भाषा की बोलियाँ तीन प्रकार की हैं।

1. हिन्दी क्षेत्र की बोलियाँ

2. अन्य भाषा क्षेत्र की बोलियाँ

3. भारतेतर क्षेत्र की बोलियाँ

1. हिन्दी क्षेत्र की बोलियाँ

हिन्दी क्षेत्र की प्रधानतः सत्रह बोलियाँ हैं । उनको पाँच उप भाषाओं में विभक्त किया गया है वे इस प्रकार हैं-

(क) पश्चिमी हिन्दी

(ख) पूर्वी हिन्दी

(ग) राजस्थानी

(घ) पहाड़ी

(ङ) बिहारी

(क) पश्चिमी हिन्दी

पश्चिमी हिन्दी मध्य देश की भाषा है। इसका क्षेत्र हरियाणा राज्य, दिल्ली, पश्चिमी उत्तरप्रदेश (कानपुर तक), मध्यप्रदेश के ग्वालियर, भोपाल, बुन्देलखण्ड, होशंगाबाद, नरसिंहपुर, सिवनी आदि प्रान्त हैं। मध्यप्रदेश के माण्डला, जबलपुर जिलों में मिश्रित (बुन्देली + मघेली) भाषा बोली जाती है।

पश्चिमी हिन्दी की पाँच बोलियाँ हैं वे-

1. कौरवी (खडीबोली), 2. ब्रजभाषा, 3. हरियाणी, 4. बुन्देली और 5. कनौजी।

1. कौरवी खडीबोली

खड़ीबोली मानक हिन्दी (Standard Hindi) मानी जाती है। इसकी तीन शैलियाँ हैं। 'हिन्दी', 'उर्दू' और 'हिन्दुस्तानी' दिल्ली मेरठ- अलीगढ़ के आसपास यह भाषा बोली जाती है। यह क्षेत्र प्राचीन काल में 'कुरु' जनपद था। इसी कारण राहुलसांकृत्यायन ने इस बोली का 'कौरवी' नामकरण किया था। अतः यह खड़ीबोली और कौरवी नाम से व्यवहृत है। अधिकांश 'खडीबोली' नाम ही प्रयुक्त हो रहा है।

• 'खडी बोली' नाम

1. 'खडी' मूलतः 'खरी' है और इसका अर्थ है 'शुद्ध' अरबी-फारसी शब्दों को निकाल कर भाषा को 'शुद्ध' रूप में प्रयुक्त करने का प्रयत्न किया गया था। तब इसका नाम 'खरीबोली' पड़ा क्रमशः खरीबोली नाम 'खडीबोली' हुआ।

2. 'खडी' का अर्थ है जो 'खडी हो'। यह 'पड़ी' का उल्टा है। पुरानी ब्रज, अवधी आदि बोलियाँ आधुनिक काल की

मानक भाषा नहीं बन सकी। अतः वे पड़ी बोलियाँ थी और यह खड़ीबोली कहलायी । यह चटर्जी की मान्यता है

3. व्रज की तुलना में यह बोली कर्कश होने के कारण कामताप्रसाद गुरु इसे खड़ीबोली मानते हैं।

4. व्रज ओकाशन्त भाषा है और खड़ीबोली आकाशन्त प्रधान भाषा। किशोरीदास वाजपेयी के अनुसार 'खड़ी' पाई के कारण खड़ीबोली नाम पड़ा।

5. ब्रज आदि से अधिक प्रचलित होकर खड़ी हुई भाषा होने से कुछ विद्वानों की मान्यता के अनुसार इसका नाम 'खड़ीबोली' पड़ा।

6. खड़ी का अर्थ मानक (Standard) होने के कारण यह खड़ीबोली कहलायी गई।

खड़ीबोली अब मानक भाषा मानी जाती है । तब भी यह खड़ीबोली कहलाती है । खड़ीबोली (कौरवी) का विकास शौरसेनी अपभ्रंश के उत्तरी रूप से हुआ है । आज इसका क्षेत्र देहरादून का मैदान भाग, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ, दिल्ली, गाजियाबाद, बिजनौर, रामपुर और मुरादाबाद तक फैला है। खड़ीबोली में लोकसाहित्य पर्याप्त लिखा गया है। पवाड़े मुख्यतः उल्लेख्य हैं।

खड़ीबोली को डॉ. ग्रियर्सन ने 'वर्नाक्युलर हिन्दुस्तानी' नाम दिया है। पश्चिमी कौरवी, पूर्वी कौरवी, पहाड़ताली तथा बिजनौरी कौरवी की (खड़ीबोली की) मुख्य उपबोलियाँ है। बिजनौरी कौखी का शुद्ध रूप माना जाता है।

2. व्रजभाषा

'व्रज' का पुराना अर्थ 'पशुओं' या 'गायों का समूह' या 'चारागाह' आदि है। पशुपालन की प्रधानता के करण यह क्षेत्र 'व्रज' कहलाया और यहाँ की बोली 'व्रजभाषा' कहलायी, वज्रभाषा का दूसरा नाम 'व्रजी' है व्रजभाषा मथुरा, आगर, अलीगढ़, धौलपुर, मैनपुरी, एटा, बदायूँ, बरेली तथा आसपास के क्षेत्रों में बोली जाती है। भुक्सा, अन्तर्वेदी, भरतपुरी, डांगी, माधुरी आदि इसकी मुख्य उपबोलियाँ हैं। साहित्य तथा लोक-साहित्य दोनों ही दृष्टियों से ब्रजभाषा सुसम्पन्न है। सूरदास, तुलसीदास, नंददास, रहीम, रसखान, बिहारी, देव, रत्नाकर आदि व्रजभाषा के प्रमुख कवि हैं। घनानन्द 'व्रजभाषा - प्रवीन' कहलाते हैं। खड़ी बोली की आकारांतता के स्थान पर ओकारान्तता (आयो, भलो, दूजो, करेगो, बडो) तथा व्यंजनांत के स्थान पर उकारान्त (सबु, मालु) नै (ने) सों (से) पै (पर) आदि इस भाषा की मुख्य विशेषताएँ हैं। 'ब्रज' मध्ययुग में साहित्यक भाषा थी। हिन्दी प्रदेश के बाहर पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र आदि प्रान्तों में भी 'व्रज' में रचनाएँ हुई थीं। इसी लिए 'व्रज' के साथ 'भाषा' शब्द जोड़ा गया था।

• व्रजभाषा का उद्भव और विकास

व्रजभाषा का उद्भव शौरसेनी अपभ्रंश के मध्यवर्ती रूप से है । इसका जन्म 1000 ई. से माना जाता है। इसका विकास तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है।

1. आदिकाल - 1000 ई. से. 1525.

2. मध्यकाल - 1525 ई. से 1800.

3. आधुनिक काल 1800 ई. से आज तक।

संदेशरासक, प्राकृतपैंगलम आदि संधिकालीन रचनाओं में भी व्रज के रूप हैं। 1350 ई. से लेकर 1500 ई० के बीच अग्रवाल कवि का प्रद्युम्नचरित, विष्णुदास की महाभारत कथा, रुक्मिणीमंगल, स्वर्गारोहण, स्नेहलीला, मनिक की बैतालपचीसी, छिताईवार्ता, थेघनाथ की गीताभाषा आदि प्रमुख ग्रन्थ व्रजभाषा में लिखे गये हैं।

परसर्ग

नैं, कहुँ, कौ, को, कूँ, सौं, सम, तौ, ते, कौ, को, के, की, कउ, माँझि, में, मंहि।

सर्वनाम

हउँ, हाँ, मई, मो, मोहि, मोरो, मोरी, मेरे, तुम, तुम्हारे, सो, ताको, वहइ, वै, उन, जो को, कौण, आपणे, आपनो, अपनी।

क्रिया

हौं, भये, भई, हो, हैं, आदि।

अव्यय

अब, तब, जब, तिहाँ, कहाँ, आगे, भीतर आदि।

मध्यकालीन व्रजभाषा सूर, नरोत्तमदास, नाभादास, केशवदास, रसखान, सेनापति, भूषण, देव, घनानन्द आदि कवियों से पल्लवित हुई। इस काल की व्रजभाषा परिनिष्ठित थी। अन्तिमकाल में लल्लूलाल, भारतेन्दु रत्नाकर, कविरन आदि रचनाकार प्रमुख हैं। इस काल की साहित्यिक व्रज के शब्द- समूह में अंग्रेजी के अनेक शब्द आ गये हैं। 'पिंगल' व्रज भाषा का एक अन्य नाम है। पिंगल छन्द शास्त्र के प्रथम आचार्य थे। उन्हीं के नाम पर छन्द शास्त्र को 'पिंगल' या 'जिंगलशास्त्र' कहने लगे। पिंगल को नागभाषा भी कहा गया है।

3. हरियाणी

'हरियाणा' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विविध मत हैं -

1. हरि + यान - कृष्ण का यान इधर से ही द्वारका गया था।

2. हरि + अरण्य - हरावन

3. हरिण + अरुण - हिरणों का जंगल

4. अहीर + आना - (राजपूताना, तिलंगाना की तरह) यहाँ अंतिम मत की संभावना अधिक हैं ।

हरियाणी का विकास उत्तरी शौरसेनी अपभ्रंश के पश्चिमी रूप से हुआ है। खड़ीबोली, अहीरवाटी, मारवाडी, पंजाबी से घिरी इस बोली को कुछ लोग खड़ीबोली का पंजाबी से प्रभावित रूप मानते हैं । हरियाणा, पंजाब का कुछ भाग तथा दिल्ली का देहाती भाग इसका क्षेत्र हैं। जाटू और बाँगरू इसकी मुख्य बोलियाँ है। हरियाणी में केवल लोक - साहित्य है । अनेक स्थानों पर 'ल' का 'ळ' (काळा, माळा); एक व्यंजन के स्थान पर द्वित्व (बाब्बू, गाड्डी), 'न' का 'ण' (होना, पाणी); को 'के' स्थान पर 'ने' (मैं ने जाना है, तुम ने पढ़ना है) आदि इस बोली की कुछ विशेषताएँ हैं ।

- **शब्द गत विशेषताएँ**

मैं चलदा सूँ - मैं चलता हूँ।

हम चल दे सौं- हम चलते हैं।

यहाँ - अठै, अडै, हाडे, याडै, उरै आदि।

वहाँ -ओगे, उडै, उत, हुडै, उठै।

जहाँ- झाँ, जठै, जडै, जित।

कहाँ - केठे, कडै, कित।

इधर - इंधानै, इंघेनै।

उधर - उडैनै, उंघानै।

किधर - किधैनै, विघानै।

अब - ईब,इब।

जब - जिब, जिद, जद।

कब - किब, कद।

4. बुंदेली

बुंदेली राजपूतों के कारण मध्यप्रदेश तथा उत्तर प्रदेश की सीमा के झाँसी, छतरपुर, सागर आदि तथा आसपास के भागों को बुन्देलखण्ड कहते हैं। वहीं की भाषा बुंदेली या बुंदेलखंडी कहलाती है। इसका क्षेत्र झाँसी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, भोपाल, ओरछा, सागर, बृसिंहपुर, सिवनी, होशंगाबाद तथा आसपास के क्षेत्र हैं । बुन्देली का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। बुन्देली का लोक साहित्य समृद्ध तथा संपन्न है। मान्यता है कि प्रसिद्ध लोककथा 'आल्हा' बुन्देली की उपबोली बनाफरी में ही लिखा गया था।

राठौरी, लोंघाती आदि बुन्देली की उपबोलियाँ हैं शब्द गत विशेषताएँ -

ऐ – ए	यहाँ - याँ
औ – ओ	वहाँ - वाँ
भूख – भूक	जहाँ - जाँ
हाथ – हात	तहाँ - ताँ
दूध – दूद	कहाँ - काँ
जीभ – जीव	कल - कालय
	सबेर - सकारे

के लिए - के लाने पै – लेकिन।

5. कनौजी

कनौज (कन्याकुब्द) कनौजी बोली का केन्द्र है। इटावा, फर्रुखाबाद, शाहजहाँपुर, कानपुर, हरदोई आदि प्रन्तों में कनौजी बोली जाती है। यह बोली शौरसेनी अपभ्रंश से निकली है। यह व्रजभाषा के निकट सम्बन्ध रखने के कारण यह व्रजभाषा की उपबोली भी मानी जाती है। कनौजी में केवल लोकसाहित्य प्राप्त है।

(ख) पूर्वी हिन्दी

पूर्वी हिन्दी के अन्तर्गत अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ बोलियाँ आती हैं।

1. अवधी

अयोध्या इस बोली का केन्द्र है। 'अयोध्या' शब्द से 'अवध' और उस से 'अवधी' शब्द बना है। लखनऊ, इलाहाबाद, फतेहपुर, मिर्जापुर, उन्नाव, रायबरेली सीतापुर, फैजाबाद, गोंडा, बस्ती, बहराइच, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, बाराबंकी आदि अवधी के क्षेत्र हैं। साहित्य तथा लोक- साहित्य से अवधी सुसंपन्न है।

• अवधी का उद्भव और विकास

ग्रियर्सन के अनुसार अवधी अर्धमागधी से उत्पन्न है। इस बोली की उत्पत्ति 1000 या 1100 ई० के आसपास हुई। अयोध्या कोसल देश की राजधानी थी। कोसलदेश की भाषा 'कोसली' थी। जिसका उल्लेख 8 वीं सदी के ग्रन्थ कुवलयमाला में मिलता है। कुछ विद्वान 'कोसली' को अवधी का पूर्वरूप मानते हैं। अर्धमागधी में विविध जैन ग्रन्थों की रचना हुई है। 'अवधी' का विकास तीन कालों में विभक्त किया जा सकता है।

1. आदिकाल

प्रारम्भ से 1400 ई० तक । यह निर्माणकाल या आरम्भकाल भी कहलाता है । प्राकृत पैंगलम के छन्द मोटे रूप से 9 वीं सदी से 14 वीं सदी तक के हैं। भाषा परिमार्जित न थी।

2. मध्यकाल

1400 ई. से 1700 तक। मुल्ला दाऊद की लोरकहा, लालचदास के हरिचरित, सूरजदास के रामजन्म, ईश्वरदास की सत्यवतीकथा तथा दुर्गारोहिणी, कुतुबन की मृगावती, जायसी, आलग, तुलसीदास, उसमान, चतुर्भुजदास, लालदास, नारायणदास की रचनाओं में मध्यकालीन अवधी सुरक्षित है। जायसी का पद्मावत हिन्दी साहित्य के लिए बडी देन है। तुलसीदास का रामचरितमानस विश्वविख्यात काव्य है। इस काल में 'भव' का विकास 'भा' में, 'हैं' के लिए 'आछत' शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

3. आधुनिककाल

1700 ई. से आज तक। छेमकरन के कृष्ण चरतामृत, शिवरामकृत भक्ति जयमाल, कासिमशाह का हंस जवाहर, नूर मुहम्मद की इन्द्रावती, भवानी शंकर की बैतालपचीसी, अलीशाह की प्रेमचिनगारी आदि पचास ग्रन्थ अवधी में रचित हैं। अवधी एक जीवित भाषा है और आज भी विकास के मार्ग पर है और आज भी परिवर्तन उसमें हो रहे हैं।

मध्यकाल में अरबी-फारसी के शब्द इस में आ गये हैं तो आधुनिक काल में अंग्रेजी के शब्द आये हैं । बोलचाल की अवधी खड़ीबोली से प्रभावित है।

- **शब्द गत विशेषताएँ**

यहाँ - इहँ, इहा, हियाँ, इआँ।

वहाँ - उहाँ, ऊहाँ, हुआँ।

जहाँ - जहँ, जहाँ, जहवाँ।

तहाँ - तह, तहाँ, तहवाँ।

कहाँ - कहँ, कहाँ, कहवाँ।

इधर - अइसी, एहकी।

उधर - आहकी, वइसी।

जिधर - जेहकी, जइसी।

किधर - केहकी, कइसी।

अब - अब, अब्बय।

तब - तब, तब्बय।

कब - कब, कब्बय, कभय।

जब - जब, जब्बय, जभय।

'बेसवाडी' अवधी की उपबोली मानी जाती है।

2. बघेली

बघेले राजपूतों के आधार पर रीवाँ तथा आसपास का क्षेत्र बघेलखण्ड कहलाता है और वहाँ की बोली बघेलखंडी या 'बघेली' कहलाती है। बघेली का उद्भव अर्धमागधी अपभ्रंश के ही एक क्षेत्रीय रूप से हुआ है। एक प्रकार से बघली अवधी की उपबोली ज्ञात होती है और यह 'दक्षिणी अवधी' कहलाती है। इसका क्षेत्र रीवाँ, नागोद, शहडोल, सतना, मैहर तथा आसपास का प्रदेश है। बघेली में केवल लोक-साहित्य है ।

- **शब्दगत विशेषताएँ**

सर्वनामों में मुझे के स्थान पर' म्वाँ', तुझे के स्थान पर 'त्वाँ', तोही शब्दों का प्रयोग होता है।

घोडा - घ्वाड

पेट - प्याट

देत - यात

आदि परिवर्तन होते हैं । तिरहारी, जुडार, गहोरा आदि बघेली की बोलियाँ हैं।

3. छत्तीसगढ़ी

मुख्य क्षेत्र छत्तीसगढ़ होने के कारण इस प्रान्त की बोली 'छत्तीसगढ़ी' कहलाती है। आर्धमागधी अपभ्रंश के दक्षिणी रूप से इसका विकास हुआ है। सरगुजा, कोरिया, बिलासपुर, रामगढ़, खैरागढ़, रायपुर, दुर्ग, नन्दगाँव, कांकेर इस बोली के क्षेत्र हैं। छत्तीसगढ़ी में केवल लोक-साहित्य है। सुरगुजिया, सदरी, बिंझवाली आदि छत्तीसगढ़ी की उपबोलियाँ हैं। उड़िया तथा मराठी की सीमा पर की छत्तीसगढ़ी में 'ऋ' का उच्चारण 'रु' किया जाता है।

• शब्दगत विशेषताएँ

महाप्राणीकरण : इलाका – इलाखा।

अधोषीकरण : बन्दगी - बन्दकी, शराब शराप।

स का छ: सीता – होता।

छ क स : होना - सेना।

(ग) राजस्थानी

'राजस्थानी' राजस्थान के भाषा रूपों के लिए ग्रियर्सन द्वारा प्रयुक्त, एक सामूहिक नाम है। 'राजस्थानी' का अर्थ है राजस्थान का पूरा राजास्थान प्राचीनकाल अलग-अलग राज्यों में बंटा हुआ था। वे खण्ड अलग-अलग नामों से बुलाये जाते थे। टॉमसने 1800 ई. में आता है। मध्ययुग में राजस्थान का राजधानी या रायथाण का नाम कर्नल टॉड के द्वारा प्रयुक्त हुआ है। टाँड के आधार पर ग्रियर्सन ने उस क्षेत्र की भाषाओं एवं बोलियों को सामूहिक रूप से 'राजस्थानी' कहा।

'राजस्थान' की भाषा या वहाँ की बोलियों की स्वतन्त्र विशेषता बहुत पहले से ही है। आठवीं सदी में यहाँ की भाषा 'मरु' नाम से व्यवहृत होती थी। पंद्रह वीं सदी के बाद अनेक ग्रन्थों में राजस्थानी का 'मरुभाषा','मारुभाषा', 'मरुदेशीया', 'मरुभूम-भाषा' आदि नामों से उल्लेख हुआ है।'कुवलयमाला' में 'मालव', (मालवी) नाम आता है और 'आईने अकबरी' 'मारवार' (मारवाडी) का नाम आता है। विविध ग्रन्थों में मेवाती, मारवाड़ी, मेवाड़ी, बीका, नेरी, उदयपुरी, हाडौती, मालवी आदि नाम आये हुए हैं। कुछ लोग राजस्थानी के लिए 'डिंगल' या 'मारवाड़ी', नाम का भी प्रयोग करते हैं। ग्रियर्सन के भाषा-सर्वेक्षण के अनुसार राजस्थानी बोलने वालों की संख्या डेढ़ करोड़ से कुछ ऊपर थी।

राजस्थानी भाषा-भाषी क्षेत्र सिन्धी, लहँदा, पंजाबी, बाँगरू, व्रजभाषा, बुन्देली, मराठी तथा गुजराती भाषा-भाषी क्षेत्रों के बीच में गुड़गाँव, अलवर, भरतपुर, जयपुर, बूँदी, कोटा, भोपाल, इन्दौर, खानदेश, बरार, उदयपुर, जैसलमेर, पूर्वी सिन्ध, जोधपुर, बीकानेर आदि तक फैला हुआ है। मुम्बई, कलकत्ता, कश्मीर, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु आदि प्रान्तों में भी राजस्थानी भाषी हैं ।

1. पश्चिमी राजस्थानी

पश्चिमी राजस्थानी को मारवाड़ी भी कहते हैं। राजस्थानी का यह रूप पश्चिमी राजस्थान- जोधपुर, अजमेर, मेवाड़, सिरोही, जैसलमेर, बीकानेर आदि प्रान्तों में बोला जाता है। शैरसेनी अपभ्रंश के उपनागर रूप से इसका विकास

हुआ है। मारवाड़ी साहित्य तथा लोक-साहित्य दोनों से सुसंपन्न है। मेरवाड़ी, ढुंढ़ारी, मेवाड़ी, सिरोही आदि इसकी उपबोलियाँ हैं।

2. उत्तरी राजस्थानी

उत्तरी मेवाती का नाम 'मेव' जाति के श्लाके 'मेवात' के नाम पर पड़ा हैं। राजस्थानी को 'मेवाती' भी कहते हैं। उत्तरी राजस्थान में इस बोली का क्षेत्र अलवर, गुडगाँव, भरतपुर आदि है। इसकी एक मिश्रित बोली अहीरवाटी है जो गुडगाँव, दिल्ली तथा करनाल के पश्चिमी क्षेत्रों में बोली जाती है। इस बोली पर हरियाणी का बडा प्रभाव है। मेवाती में केवल लोक साहित्य है । राठी, नहेर, कठर, गुजरी आदि इसकी उपबोलियाँ हैं । उत्तरी राजस्थानी का उद्भव शौरसेनी अपभ्रंश के उपनागर रूप से हुआ है ।

3. पूर्वी राजस्थानी

पूर्वी राजस्थानी की प्रतिनिधि बोली जयपुरी है और इसका केन्द्र जयपुर है। राजस्थान के पूर्वीभाषा में जयपुर, अजमेर किशनगढ़ आदि क्षेत्रों में यह बोली जाती है। जयपुर क्षेत्र को पुराना नाम 'ढूंढ़ाण' है। इस लिए जयपुरी को 'ढुंढाणी' भी कहते हैं। यह बोली शौरसेनी अपभ्रंश के उपनागर रूप से विकसित हुई है। इस में केवल लोक-साहित्य है। तोरावाटी, काठँड, चौरासी आदि इसकी उपबोलियाँ हैं।

4. दक्षिणी राजस्थानी

इसका मुख्य क्षेत्र मालवा है। इस लिए यह 'मालवी' कहलाती है । इन्दौर, उज्जैन, देवास, रतलाम, भोपाल, होशंगाबाद आदि प्रान्तों में 'मालवी' बोली जाती है। शौरसेनी अपभ्रंश के उपनागर रूप से यह बोली विकसित हुई थी। इस बोली में साहित्य तथा पर्याप्त लोक-साहित्य है। सोंडवाडी, राँगडी, पाटवी, रतलामी आदि दक्षिणी राजस्थानी की उपबोलियाँ हैं । इनके अलवा 'डिंगल' राजस्थान की एक और बोली है। 'मारवाडी' की यह साहित्यिक भाषा है।

(घ) पहाड़ी

पहाड़ी क्षेत्रों में बोली जाने के कारण यह नाम पड़ा है। ग्रियर्सन के भाषा सर्वोक्षण के अनुसार 'पहाड़ी' ऊपर थी। 'पहाड़ी' हिमाचल प्रदेश में भद्रवाह के उत्तर-पश्चिम से लेकर ने पाल के पूर्वी भाग तक फैली हुई है। इसके अन्तर्गत तीन प्रधान रूप हैं- पश्चिमी पहाड़ी, मध्यवर्ती पहाड़ी तथा पूर्वी पहाड़ी । पूर्वी पहाड़ी नेपाली है । पहाड़ी की बोलियों में साहित्यिक महत्व केवल 'नेपाली' एवं कुछ 'कुमायूँनी' का ही है। अन्य बोलियों में लोक साहित्य ही है। इस बोली के लिए प्रमुखतः नागरी लिपि का प्रयोग होता है। टाक्री, फारसी, कोची और सिरमौरी लिपियाँ भी प्रचलित हैं। डॉ. सुनीतकुमार चटर्जी के अनुसार पहाड़ी बोलियों का मूलाधार पैशाची, दरद या खस है। इन बोलियों का सम्बन्ध शौरसेनी अपभ्रंश से अधिक ज्ञात होता है।

1. पश्चिमी पहाड़ी

पश्चिमी पहाड़ी, पहाड़ी की पश्चिमी कोलियों का एक सामूहकि नाम है। ग्रियर्सन के अनुसार इसके बोलनेवालों की संख्या लगभग 8, 53, 468 थी। इसका भौगोलिक विस्तार पबंजाब के उत्तरी पूर्वी पहाड़ी भाग में भद्रवाह, चंबा, मंडी, शिमला, चकराता और लाहुल- स्पिति आदि प्रान्त हैं। जैन सारी, सिर मौरी, बघाटी, चमेआली और क्योंठली इसकी प्रमुख बोलियाँ है। इन के अतिरिक्त सतलुज वर्ग की बोलियाँ, कुलू वर्ग की बोलियाँ, मंडी वर्ग जी बोलियाँ तथा

भद्रवाह वर्ग की बोलियाँ हैं । इन बोलियों में लोक-साहित्य पर्याप्त मात्रा में है। टाकरी और देवनागरी लिपियाँ यहाँ प्रचलित हैं ।

2. मध्यवर्ती पहाड़ी

पहाड़ी भाषा क्षेत्र के मध्य भाग में बोले जाने के कारण यह मध्यवर्ती पहाड़ी, माध्यमिक केन्द्रीय या मध्य पहाड़ी कहलाती है। ग्रियर्सन के भाषा सर्वेक्षण के अनुसार इसके बोलनेवालों की संख्या लगभग 11,07,612 था। यह कुमायूँ तथा गढ़वाल में बोली जाती है। 'कुमायूँनी' तथा 'गढ़वाली' इसकी प्रमुख बोलियाँ हैं। कुछ साहित्य का सृजन कुमायूँनी में ही हुआ है।

- **कुमायूँनी**

कुमायूँ पर्वत क्षेणियाँ इस का प्रमुख क्षेत्र होने के कारण यह बोली कुमायूँनी कहलाती है। 'कुमायूँ' शब्द की व्यत्पत्ति संस्कृत शब्द 'कूर्माचल' या 'कुमायूँनी' से मानी जाती है ग्रियर्सन के भाषा सर्वोक्षण के अनुसार 'कुमायूँनी' बोलनेवालों की संख्या लगभग 4, 36, 80 थी। कुमायूँ कमिश्नरी के नैनीताल, अलमोडा, पिथौरागढ़, चमोली तथा उत्तर काशी जिलों बोली जाती है। गढ़वाली, तिब्बती, नेपाली और पश्चिमी हिन्दी से यह बोली घिरी हुई हैं। खसपरजिया, कुमयाँ या कुमैयाँ, फल्दकोटिया, पछाई, चौगरखिया, गंगोला, दानपुरिया, सीराली, सोरियाली अस्कोटी, जोहारी, भोटिआ आदि कुमायूँनी की उपबोलियाँ । 'कुमायूँनी' पर ' राजस्थानी' का अधिक प्रभाव है, वह उसका एक रूप- सा ज्ञात होती है।

- **गढ़वाली**

इस बोली का क्षेत्र प्रधान रूप से गढ़वाल होने के कारण इसका यह नाम पड़ा है। पहले इस क्षेत्र के नाम केदारखण्ड, उत्तरखण्ड आदि थे। यहाँ बहुत से गढ़ों के कारण मध्ययुग में लोग इसे 'गढ़वाल' कहने लगे। ग्रियर्सन के अनुसार इसके बोलनेवाले की संख्या 3,70,824 के लगभग थी । ट्रेहरी, अलमोडा, देहरादून, सहारनपुर, बिजनौर, मुरादाबाद आदि प्रान्तों में 'गढ़वाली' प्रयुक्त होती है।

(ङ) बिहारी

बिहारी उपभाषा प्रमुखतः बिहार में बोली जाती है। ग्रियर्सन के भाषा - सर्वेक्षण के अनुसार बिहारी भाषाओं के क्षेत्र में उसके बोलनेवालों की संख्या लगभग 36,239,967 थी। क्षेत्र के बाहर लगभग 9, 80, 815 लोगों से बोली जाती है। इसका भौगोलिक विस्तार उत्तर में छोटा नागपुर तक तथा पश्चिम में बस्ती, जौनपुर, बनारस और मिर्जापुर से लेकर पूर्व में मल्दह और दिनाजपुर तक है। उत्तर प्रदेश के कुछ प्रदेशों में भी बिहारी बोली जाती है।

बिहारी की उत्पत्ति पश्चिमी मागधी अपभ्रंश से हुई है। इसके अन्तर्गत भोजपुरी, मगही, मैथिली बोलियाँ आती हैं। बिहारी की बोलियों में साहित्य रचना प्रमुखतः मैथिली में हुई हैं। नागरी, कैथी, मैथिली तथा महाजनी लिपियाँ प्रचलित हैं।

1. भोजपुरी

'भोजपुर' नामक कस्बे के नाम पर यह बोली उत्पन्न हुई है। प्राचीन काल में भोजपुर इसी नाम के राज्य की राजधानी था। भाषा के रूप में 'भोजपुरी' शब्द का प्रथम प्रयोग 1789 का मिलता है। भोजपुरी को 'पूरबी' भी कहते हैं। 'भोजपुरी' और 'भोजपुरिया' पर्यायवाची हैं। भोजपुरी क्षेत्र के लगभग 2 करोड़ और क्षेत्र के बाहर 4 लाख लोग यह बोली बोलते हैं।

'भोजपुरी' उत्तर में नेपाल की दक्षिणी सीमारेखा के आसपास से लेकर दक्षिण में छोटा नागपुर तक और पश्चिम में पूर्वी मिर्जापुर, बनारस तथा पूर्वी फैजाबाद से लेकर पूर्व में राँची और पटना के पास तक बस्ती, गोरखपुर, देवरिया, छपरा सीवान और गोपालगंज, जौनपुर (पुर्वी), गाजीपुर, बलिया, भोजपुर, पालम आदि प्रान्तों में बोली जाती है। भोजपुरी की प्रधान उपबोलियाँ चार हैं। उत्तरी भोजपुरी, दक्षिणी भोजपुरी, पश्चिमी भोजपुरी तथा नागपुरिया, दक्षिणी भोजपुरी भोजपुर का परिनिष्ठत रूप है।

भोजपुरी में लिखित साहित्य प्रायः नहीं के बराबर है। राहुलजी तथा कुछ अन्य लोगों ने भोजपुरी में कुछ साहित्य रचना अवश्य की है। भोजपुरी की उत्पत्ति पश्चिमी मागधी या मागधी अपभ्रंश के पश्चिमी रूप से मानी जाती है।

2. मगही

'मगही' शब्द 'मागधी' का विकसित रूप है। 'मगही' या 'मागधी' का अर्थ है। 'मगध की भाषा'। ग्रियर्सन के भाषा सर्वेक्षण के अनुसार 'मगही' बोलनेवालों की संख्या लगभग 65,64,817 थी, अब यह संख्या और भी बढ़ गयी होगी। मगही पूरे गया जिले में तथा पटना, हजारी बाग, मुंगेर, पालामऊ, भागलपुर और रांचीजिलों के कुच भागों में बोली जाती है। मगही में लिखित साहित्य नहीं है। लोक साहित्य पर्याप्त है, जिस में 'गोपीचन्द' और 'लोरिक' प्रसिद्ध है। इसकी लिपि प्रमुखतः कैथी तथा नागरी है।

3. मैथिली

'मिथिला' से सम्बद्ध बोली मैथिली है। याज्ञवल्क्य स्मृति तथा वाल्मीकि रामायण में इसका उल्लेख है। 'मिथिला' शब्द की व्युत्पत्ति अनिश्चित है। एक मतानुसार एक प्राचीन राजा मिथि के नाम पर यह मिथिला कहलाया। कुछ लोगों की मान्यता है कि यह प्रान्त पहले समुद्र था। समुद्र-मथन यहीं हुआ था। इसी लिए यह मिथिला कहलाया। कुछ लोग 'मिथ' का अर्थ ' मिला हुआ' बताते है। छोटे-छोटे वैशाली राज्यों का मिला हुआ प्रान्त होने के कारण यह मिथिला कहलाया । मैथिली भाषा के लिए एक प्राचीन नाम 'देसिल' 'बअना' (विद्यापति) मिलता है। इसका एक अन्य नाम 'तिरहुतिया' है। सर्वप्रथम 'मैथिली' का नाम 1801 में प्रयुक्त हुआ था। ग्रियर्सन के भाषा - सर्वेक्षण के अनुसार इसके बोलनेवालों की संख्या एक करोड़ से अधिक थी। 'मैथिली' का क्षेत्र बिहार के उत्तरी भाग में पूर्वी चम्पारन, मुजफ्फरपुर, मुंगेर, भागलपुर एवं नेपाल की तराई में भी बोली जाती है।

बिहारी की बोलियों में केवल 'मैथिली' ही साहित्य की दृष्टि से सम्पन्न है। 'मैथिल कोफिल' विद्यापति हिन्दी की विभूति हैं। उमापति, नन्दीकपति, रामापति, महीपति तथा मनबोध मैथिली के अन्य साहित्यकार हैं। मैथिली ब्राह्मणों में मैथिली लिपि प्रचलित है जो बँगला से मिलती-जुलती है।

2. भारत में अन्य भाषा क्षेत्र की बोलियाँ इन में तीन बोलियाँ मुख्या हैं-

दक्खिनी- दक्खिन में प्रयुक्त होने के कारण यह दक्खिनी नाम से बुलायी जाती है। इसका मूल-आधार दिल्ली के आस-पास की 14-15 वीं सदी की खड़ीबोली है। मुसलमानी फौज, फकीर, दरवेश के साथ यह बोली व्याप्त हुई और उत्तर भारत से जाने वाले मुसलमानों और हिन्दुओं द्वारा प्रयुक्त होने लगी। इस में कुछ तत्व पंजाबी, हरियाणी, व्रज और अवधी के भी हैं। दक्षिण में जाकर यह बोली काफी मिश्रित हो गयी। इसका क्षेत्र मुख्यतः बीजापुर, गोलकोंडा, अहमदनगर आदि प्रान्त हैं। इस पर बाद में उर्दू का भी प्रभाव पड़ा और साथ ही तमिल, तेलुगु तथा कन्नड़ का भी प्रभाव पड़ा। इसकी उपबोलियाँ हैं - गुलवर्गी, बीदरी, बीजापुरी, हैदराबादी आदि।

2. मुम्बइया हिन्दी

यह बोली मुम्बई नगर में बोली जाती है। इसका मूल आधार खड़ीबोली है। किन्तु इस पर मराठी, गुजराती आदि भाषाओं का प्रभाव भी है।

मुम्बइया हिन्दी के उच्च वर्ग के लोग औपचारिक अवसरों पर प्रयोग करते हैं। इस बोली का प्रयोग फिल्मों में तथा उसी आँचल से सम्बद्ध कथा साहित्य में प्राप्त होता है।

3. कलकतिया हिन्दी

इसका प्रयोग कलकत्ता में होता है। इस बोली पर बंगला तथा भोजपुरी का काफी प्रभाव है। इसी प्रकार शिलांग, अहमदाबाद आदि प्रान्त में भी हिन्दी के कुछ रूप बोले जाते हैं।

3. भारत के बाहर बोली जानेवाली हिन्दी बोलियाँ।

सोवियत संघ में तजिकिस्तान तथा उज्बेकिस्तान की बोलियाँ, मारिशसी (मारिशस में), फ़ीजी (फ़ीजी में) सूरीनामी (सूरीनाम में) तथा ट्रिनिडाडी (ट्रिनिडाड में) की बोलियाँ आज विश्व भाषा हिन्दी के रूप में विख्यात हैं । इन में सोवियत संघ बोलियों का मूल आधार में वाती लगता है, जिस पर पंजाबी, पश्तो ताजिक, उज्बेक तथा रूसी का प्रभाव है । शेष का मुख्य आधार भोजपुरी है तथा कुछ पर अवधी तत्त्व भी हैं। साथ ही स्थानीय भाषाओं का भी प्रभाव पड़ा है। कुछ यूरोपीय प्रभाव भी है। मारिशसी पर फ्रांसीसी का प्रभाव, सूरीनामी पर चड का प्रभाव और बहुत सी बोलियों पर आज की मानक हिन्दी का प्रभाव पड़ रहा है।

5.3. सारांश

हिंदी कई लोगों की मातृभाषा है, कुछ प्रदेशों के लोगों के लिए प्रथम भाषा है, जो सामान्य जीवन के क्षेत्रों में बोलियों का इस्तेमाल करते हैं। इसके विविध स्थानीय रूप भी हैं, जैसे बंबई की हिंदी, हैदराबाद की हिंदी। ऐतिहासिक कारणों से हिंदी की संस्कृतनिष्ठ शैली भी है, अरबी-फारसी शब्दों से युक्त उर्दू शैली भी है। ये विविध रूप भाषा के विकास के लक्षण हैं, इनसे भाषा समृद्ध होती हैं। हर समाज में भाषा की कई भूमिकाएँ हो जाती हैं। हिंदी अखिल भारतीय संपर्क की भाषा है।

हिंदी देश की राजभाषा है यह ज्ञान - विज्ञान के विषयों की अभिव्यक्ति का माध्यम है। यह अंतरराष्ट्रीय भाषा। हर भूमिका में भाषा में कुछ विशिष्ट लक्षण होंगे, भाषा का अपना अलग रूप होगा। जैसे राजकाज की भाषा की शब्दावली और वाक्य विन्यास उसे भाषा के अन्य रूपों से अलग करेंगे। यहाँ भी इस कथन को दुहरा लेना चाहेंगे कि भूमिका विस्तार भाषा के विकास का आधार है, इससे भाषा समृद्ध होती है।

हिन्दी का क्षेत्र विशाल है तथा हिन्दी की अनेक बोलियाँ (उप-भाषाएँ) हैं। इनमें कुछ में अत्यंत श्रेणी के साहित्य की रचना भी हुई है। ऐसी बोलियों में ब्रजभाषा और अवधी प्रमुख हैं। ये बोलियाँ हिन्दी की विविधता हैं और उसकी शक्ति भी। वे हिन्दी की जड़ों को गहरा बनाती हैं। हिन्दी की बोलियाँ और उन बोलियों की उप-बोलियाँ हैं, जो न केवल अपने में एक बड़ी परंपरा, इतिहास, सभ्यता को समेटे हुए हैं वरन स्वतंत्रता संग्राम, जनसंघर्ष, वर्तमान के बावजूद के खिलाफ भी उनका रचना संसार सचेत है। हिन्दी की बोलियों में प्रमुख हैं- अवधी, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुंदेली, बघेली, भोजपूरी, हरियाणवी, राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी, मालवी, नागपुरी, खोरठा, पंचपरगनिया, कुमाउँनी, मगही आदि।

5.4. बोध प्रश्न

1. हिंदी की विविध उपभाषाएँ और हिन्दी क्षेत्रों में हिन्दी का रूप के बारे में विस्तृत रूप में लिखिए।

2. हिन्दी की बोलियों पर निबंध लिखिए।

5. 5. सहायक ग्रंथ

1. हिन्दी की बोलियाँ- जय राम, भाषा प्रकाशन, नई दिल्ली।

2. हिन्दी का भौगोलिक विस्तार-सुनंदा पाल, भाषा प्रकाशन, नई दिल्ली।

3. हिन्दी भाषा का विकास और बोलियाँ -ज्योति मिश्र।

डॉ. सूर्य कुमारी पी.

6. हिन्दी के सर्वनाम और कारक

6.0. उद्देश्य

पिछले इकाइयों में हम हिन्दी भाषा का उद्भव, विकास और स्वरूप पर प्रकाश डाले हैं। इस इकाई में हिन्दी भाषा के व्याकरणिक अंशों पर से संबंधित विषयों पर जानकारी प्राप्त करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद हम-

- हिन्दी सर्वनामों का उद्‌भव - विकास के बारे में,

- हिन्दी कारकों का उद्भव - विकास के बारे में जान पायेंगे।

रूपरेखा

6.1. प्रस्तावना

6.2. हिन्दी के सर्वनाम - उत्पत्ति और विकास

6.3. हिन्दी कारक- उत्पत्ति और विकास

6.4. सारांश

6.5. बोध प्रश्न

6.6. सहायक ग्रंथ सूची

6.1. प्रस्तावना

किसी भी भाषा का, अध्ययन करन संबंधिक व्याकरणांश को जानना जरूरी है। हिन्दी भाषा का विकास आधिकाल से लेकर आधुनिक काल तक अनेक करवटें लेकर खड़ीबोली स्थिति तक आया है। हिन्दी भाषा का उद्भव विभिन्न बोलियों से हुआ है। अर्थात इस के शब्द, वाक्य, संरचना, व्याकरण आदि भी विभिन्न बोलियों से संग्रहित किया गया है। समय के अनुसार भाषा के विकास क्रम में उसकी व्याकरणांश, शब्द शक्तियाँ भी बदलते हुए प्रयोग में आए हैं। ऐसे ही व्याकरणांश या भाषा भागों के मुख्य अंश सर्वनाम, कारक के बारे में हम इस इकाई में पढेंगे।

6.2. सर्वनाम का उत्पत्ति और विकास

किसी भी भाषा में नाम को सूचित करने वाले शब्दों को हिन्दी संज्ञा कहते हैं। नाम के बदले आने वाले शब्दों को सर्वनाम कहते हैं। सर्वनाम का प्रयोग संज्ञा की पुनरुक्ति को रोकने के लिए किया जाता है। हिन्दी सर्वनाम विकारी शब्द है। सर्वनाम में लिंग के कारण परिवर्तन नहीं होता, बल्कि वचन के कारण परिवर्तन होता है। सर्वनामों का सम्बोधन भी नहीं होता।

सर्वनाम के छः भेद होते हैं। पुरुषताचक सर्वनाम, निश्चयवाचक सर्वनाम, अनिश्चय वाचक सर्वनाम, सम्बन्ध वाचक सर्वनाम, प्रश्नवाचक सर्वनाम और निजवाचक सर्वनाम।

हिन्दी सर्वनामों की उत्पत्ति तथा विकास वैदिक तथा लौकिक संस्कृत से हुई किन्तु प्राकृत अपभ्रंश और आधुनिक भारतीय भाषाओं तक आते-आते उनमें पर्याप्त परिवर्तन हो गया। यथा-

1. पुरुषवाचक सर्वनाम: इसके तीन भेद होते हैं।

(अ) उत्तम पुरुष -मैं कामता प्रसाद गुरु ने मैं का संबंध संस्कृत 'अहम्' से माना है। हिन्दी में इसको निम्नलिखित रूप है।

	एकवचन	**बहुवचन**
मूलरूप / अविकारी	मैं	हम
विकृत / विकारी रूप	मुझ (मुझे)	हम (हमे)
सम्बन्ध कारक रूप	मेरा	हमार

मैं का संबंध जो 'अहम्' से माना (कामता प्रसाद गुरु वारा) संस्कृत में ध्वन्यात्मक विकास मैं नहीं हो सकता। इन रूपों की व्युत्पत्ति एवं विकास इस प्रकार है—

'मैं'- जॉन बीस्म, सुनीतिकुमार चटर्जी, डॉ. उदयनारायण तिवारी के अनुसार -सं. मया >मए > पा. मया >प्रा. मई > अप. मई या मई >हि. मैं।

'मैं' में अनुनासिकता के बारे में डॉ. भोलानाथ तिवारी का विचार है कि 'मयां' में विद्यमान 'म्' के प्रभाव से यहाँ अनुनासिकता आ गई है।

'मुझ': अधिकांश विद्वान 'मुझ' को 'मध्यम' से सम्बद्ध मानते है। इसकी उत्पत्ति इस तरह मानी है -

सं. मध्यम्। मध्ययं > पा. मरहं > प्रा. मज्झ >अप. मृज्यु > हि. मुझ।

'मुझ' में उकार (७) का आगम 'तुझे' के सादृश्य पर माना जाता है, सं तुभ्यम् > म. भा. आ. तुज्झ> तुझ।

'मुझे'- डॉ. भोलानाथ तिवारी के विचार में अप- 'तुज्झे' के सादृश्य पर 'मुज्झे' बना, जो हिन्दी में 'मुझे' रूप में विकसित हुआ।

इसके 'ए' को धीरेद्र वर्मा विकारी 'ए' (लड़का - लड़के) मानते हैं।

'मेरा' - मेरा, हमारा, तेरा, तुम्हारा में अंत्य 'आ' लिंग - वचन का घोतक है। 'आ' के स्थान पर 'ए' आने से मेरे, हमारे, तेरे, तुम्हारे, 'ई' आने से मेरी, हमारी, तेरी, तुम्हारी आते हैं। इन शब्दों में 'र' सम्बन्ध कारक का द्योतक है।

केलॉग और धीरेन्द्रवर्मा के अनुसार -

मध्य केरक > महकेरो > म्हारो> मारो > मेरा बना है।

डॉ. उदयनारायण तिवारी के अनुसार- मम-केर > मुमेर > मेर - अ > मेरा।

आठवीं सदी के एक संस्कृत-चीनी कोश में 'मेरा' के अर्थ में एक शब्द प्राप्त हुआ है ममेरा। यह मम + केर > ममेर >मेर होता है।

मेर + लिंग - वचन के अनुसार मेरा, मेरे, मेरी में विकसित हुआ ज्ञात होता है।

हम: कामताप्रसाद गुरु के अनुसार 'हम' संस्कृत के 'अहं' से विकसित है। किन्तु अहं से उसके ध्वन्यात्मक विकास की सम्भावना नहीं है। चटर्जी, धीरेंद्र वर्मा, उदयनारायण तिवारी।

भोलानाथ तिवारी के अनुसार - वैदिक सं. असमे > पा, प्रा. अप. अम्हे > अम्ह> हि. हम। अपभ्रंश से हिन्दी विकास में धीरेद्र वर्मा 'में' और 'है' में विपर्यय मानते हैं।

गुजराती में हम के लिए 'अम' का प्रयोग होता है। यहाँ ज्ञात होता है कि 'अम्ह' का 'अम' बना और फिर अम से 'हम' बना - अम्ह> अम > हम।

'हमे'- बीरम तथा धीरेन्द्रवर्मा यह रूप प्राकृत, अपभ्रंश 'अम्हाई' से मानते हैं। डॉ. उदयनारायण तिवारी 'हमें सर्वनाम में 'ए' के आगमन को वस्तुत: 'एन' से मानते हैं। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार अपभ्रंग कर्म कारक 'आम्हें' से 'हमें' का विकास हुआ है।'हमारा'-**डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार** – सं. अस्मे + कृतक:> अग्ह करको > अम्ह आरओ >अम्हारड > हमारा।

द्वारिका प्रसाद सबसेना के अनुसार- शं. अस्म + कार्यक:> अम्हकरोएशे> अम्हआरो> अम्हारे > हमारी> हमारा। **उदयनारायण तिवारी ने** 'हमारा' को 'अस्म कर' से जोड़ा है।

(आ) मध्यम पुरुष - हिन्दी में इसके निम्नलिखित रूप हैं-

	एकवचन	बहुवचन
अविकारी रूपा मूल रूप	तू	तुम, आप
विकारी रूप / विकृत रूप	तुझ, तुझे	तुम्हें
सम्बन्ध कारक रूप	तेरा	तुम्हारा

तू : **डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार-** वैदिक सं. तुह्य> प्रा. तुज्ज> अप. तुज्झ >हि.तुमा। हार्मलो, चटर्जी, बाबूराम सक्सेना आदि विद्वान 'तू' का विकास 'लम' से मानते हैं।

सं. त्वम्> पा. त्वं तुवं > प्रा. तुवं > हि. तू।

तुझ: तुम के विकास के सम्बन्ध में अनेक मत हैं। भोलानाथ तिवारी का मत युक्तियुक्त है। वै. सं. तुझ्य> प्रा. तुज्ज> अप. तुज्झ> हिं. तुझ।

धीरेन्द्र वर्मा तथा उदयनारायण तिवारी के अनुसार- सं. तुभ्यम् > तुज्झ > तुझ।

तुझे: धीरेन्द्र वर्मा जी 'तुझे' के 'ए' को विकारी 'ए' मानते हैं।

डॉ. भोलानाथ तिवारी के विचार में प्रा 'पुज्झे' से यह निकला है।

तेरा: उदयनारायण तिवारी ने 'तेश' का विकास सं 'तल+ केर' (केर- प्राकृत प्रथम है) से माना है। इसके विपरीत डॉ. भोलानाथ तिवारी ने इसका विकास सं. 'तुभ्यं कृतक' और 'तव + कृतक' से माना है।

तु**म:** कामताप्रसाद गुरु तथा द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने 'तुम' की उत्पत्ति सं 'बम' से मानी है, जब कि डॉ. उदयनारायण तिवारी ने लिखा है- "वै.सं. युष्मे का रूप. प्रा. में 'तुम्हे' हो गया तथा 'युष्म' का रूप प्रा. में तुम बन गया।"

तुम्हें: तुम्हे का विकास धीरेन्द्रवर्मा प्राकृत, अपभ्रंश 'तुम्हारे' से मानते हैं। भोलानाथ तिवारी के अनुसार वैदिक 'युष्मे' से 'तुम्हें' का विकास हुआ है। वै. सं. युष्मे> पालि, प्रा. अप- तुम्हें > हिन्दी तुम्हें।

तुम्हारा: डॉ. धीरेंद्र वर्मा के अनुसार- तुम्ह + करको > तुम्ह अरओ >तुम्हारी >तुम्हारो>तुम्हारा। 'तैरी' तथा 'तुम्हारी' में स्त्री लिंग प्रत्यय 'ई' है। यहाँ 'करको' संस्कृत 'कृतकः' से विकसित ज्ञात होता है।

'आप': तुम के स्थान पर आदर के लिए 'आप' का प्रयोग होता है। इसकी उत्पत्ति के बारे में प्रमुखतः दो मत है।

1. बीस्म, चटर्जी, धीरेन्द्रवर्मा आदि के अनुसार संस्कृत आत्म > प्रा. अप्प > हिं. आप।
2. डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार 'संस्कृत', 'आत्म' से हिन्दी निजवाचक सर्वनाम 'आप' का विकास हुआ है। उनके विचार में हिन्दी 'आप' संस्कृत 'आप्त' का विकसित रूप है - आप्त > अप्प > आप।

(इ) अन्य पुरुष।

	एकवचन	बहुवचन
अधिकारी / मूल रूप	वह, यह	वे, थे
विकारी रूप	उस	उन

वह : कामता प्रसाद गुरु के अनुसार सं. सः > प्रा. सो > हि. वह।

डॉ. उदयनारायण तिवारी के अनुसार- सं. असोपा असु > प्रा. असो, ओह > हि. वहा। विशेल, चटर्जी, तिवारी के आधार पर अव: >आवो >वो >ओउ>ओहु > वटु>वह बना है।

उस: धीरेन्द्रवर्मा के अनुसार 'उस' का विकास संस्कृत 'अवस्था' से हुआ है। सं. अवस्थ > प्रा. अडस्स > हि. उस।

उदयनारायण तिवारी इसका विकास 'अमुष्य' से मानते हैं। सं- अमुष्य > अमुस्स > प्रा. अउस्स >उस।

वे: 'वे' की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रमुख मत तीन हैं।

1. चटर्जी के अनुसार कल्पित रूप अवेभिः > अवधि > वे है।

2. धीरेन्द्रवर्मा 'वे' की व्युत्पत्ति अनिश्चित मानते हैं।

3. उदयनारायण तिवारी के मतानुसार 'वह + एभिः' से वे विकसित है। वह + एभिः > अप. अहि > अइ > हि. ए = वे।

उन: उदयनारायण तिवारी के अनुसार संस्कृत 'अमुष्याम्' से उनका विकास हुआ है। सं. अमुष्यामु> अमूनाम> अणं> उन >।

डॉ. भोलानाथ तिवारी संस्कृत के कर्म बहुवचन 'अमून' ले 'उन' का विकास मानते हैं। सं. अमून > प्रा. अमूण > अप. उण्ड > हि. उन्ह उन।

उन्हें: भोलानाथ तिवारी के विचार में यह अप. 'उन्हें' से 'हम', 'तुम्हे' के सादृश्य पर बना है।

2. निश्चयवाचक सर्वनाम: इस सर्वनाम के दो रूप है-

1. निकटवर्ती रूप	**2. दूरवर्ती रूप वह**
यह	वह

दूरवर्ती रूप वह पर (अन्यपुरुष वाचक सर्वनाम) विचार किया जा चुका है।

निकटवर्ती 'यह' के रूप इस प्रकार हैं-

	एकवचन	**बहुवचन**
मूल / अधिकारी रूप	यह	थे
विकृत / विकारी रूप	इस	इन

यह: लगभग सभी विद्वानों के अनुसार इस सर्वनाम का विकास-क्रम इस प्रकार है- पं. एषः > वा. एस > एसो >प्रा. एसो> आप. एसो> एहो, एहु >एह>हि. यह।

ये: डॉ. उदयनारायण तिवारी तथा डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार- सं. एते > पा. एते > प्रा. एप. अप. एइ > ए > हि. ये। चटर्जी के अनुसार - सं. ऐते: > एतेहि > कल्पित रूप एएिह >ये है।

इस : धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार - सं. अस्य > प्रा. एकस्स > हि .इस। डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी तथा उदयनारायण तिवारी के अनुसार- सं. एतस्य > पा. एतस्स > प्रा. एअस्य > इस।

इसे: धीरेन्द्र वर्मा ने 'ए' (ऐ) को विकृत रूप का चिह्न माना है। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार यह 'तुझे','मुझे' के आधार पर बना है।

इन: 'इन' का सम्बन्ध कई शब्दों से जोडा जाता हैं। किशोरीदास वाजपेयी यह + बृहत्व बोधक 'न' से 'इन' को जोड़ते हैं। धीरेन्द्रवर्मा ने 'इस' पर संज्ञा रूपों के षष्ठी बहुवचन के प्रत्यय 'आनाम' के प्रभा से 'इन' का विकास माना है। उदयनारायण तिवारी के अनुसार (कल्पित रूप) एतासाम > एतेषाम > एतानाम् > एआणं > एण्ड > एन्ह > इन्ह> इन।

इन्हें: डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने इसको 'इन्ह' का विकृत रूप माना है। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार यह (इन्हें) हमें, तुम्हें के आधार पर बना।

3. अनिश्चय वाचक सर्वनाम: इस सर्वनाम के लिए हिन्दी में कोई तथा कुछ रूप प्रचलित है। इनके अन्य रूप इस प्रकार है-

	एकवचन	बहुवचन
मूल/ अधिकारी रूप	कोई, कुछ	कोई
विकृत | विकारी रूप	किसी	किन्हीं

कोई- प्रायः सभी विदुतानों के अनुसार इसका विकास क्रम इस प्रकार है- सं. को पि (कः अपि)> पा. को पि >मा. को वि > अप . कोई> हि .कोई।

कुछ - हिन्दी में निर्जीव पदार्थ के लिए अनिश्चयवाचक सर्वनाम कुछ का व्यवहार होता है। कुछ की व्युत्पत्ति विवादग्रस्त

है। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार- सं- कश्चिद् > प्रा. कच्छु >हि. कुछ। डॉ. उदयनारायण तिवारी के अनुसार- सं> किंचिद् > किळि (अशोक के मध्य तथा पूर्वी शिला लेखों में) > किंळि (पश्चिमी शिला लेखों में >किळु (अपभ्रंश की उकार बहुत प्रवृत्ति> कुळु (स्वर संगति में) कुळु।

यह विचार सब को मान्य है। संस्करण रूप इस प्रकार है- सं > किंचित > प्रा. किंचि > किं = छि > लिपत रूप किछि > अप. किच्छु >भोजपुरि किछु > पुरानी हिन्दी क= छु > हि. कुछ।

किसी: इस के संबंध में तिवारी जी का विचार सर्वमान्य हैं। सं. कस्यापि >पा. किस्यापि > प्रा. किस्मति > अप. किस्सा > हि. किसी। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार - सं. किस्यापि> पा. किस्यापि> प्रा. किस्सवि > अप. किस्साई> हि. किसी।

किन्ही: डॉ. धीरेन्द्रनाथ वर्मा ने 'किन्ही' सर्वनाम की उत्पत्ति को अनिश्चित भाना है। डॉ. उदयनारायण तिवारी के अनुसार- सं. केषामपि > कानामपि> म. भा. आ. काणंपि > काणंवि> काण्इ > किन्ही।

4) प्रश्नवाचक सर्वनाम: इसका मूल रूप इस प्रकार है-

	एकवचन	**बहुवचन**
मूल/ अविकारी रूप	कौन, क्या	कौन
विकृत / विकारी रूप	किस	किन

कौन: डॉ. उदयनारायण तिवारी के अनुसार-- सं. कः +पुनः > कपुण> कवुण> कड्ण > कौण > कौन। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार-- सं. कः पुनः > पा. को .पन > अप. कवण >हि. कौन।

क्या: कामताप्रसाद गुरु ने इसे सं. किम् से जोड़ा है। यहाँ पर इस विकास में अर्थ के स्तर पर तो समानता है, किन्तु 'किस' से 'क्या' के ध्वन्यात्मक विकास की संभावना पर डॉ. भोलानाथ तिवारी को सन्देह है। इन्होंने 'क्या' सर्वनाम को सं. 'कस्थ' के विकसित माना है। उनके अनुसार इसका विकास इस प्रकार है- सं. कस्य >किस्य> प्रा. किस्सा< किसा < किया।

किस: डॉ. उदयनारायण तिवारी के अनुसार--सं. कस्य > म. भा. आ. कस्स, किस्स >किस। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार --सं. कस्य > किस्य > पा. किस्स, अप. किस > हि. किस।

किन: डॉ. उदयनारायण तिवारी के अनुसार--सं. केष्म् > प्रा. काणं > काण, किंण> किन। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार -- सं. केषानाम् > प्रा. केसानं > प्रा. कणं > अप- किण >हि. किना।

किन्हें: डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार यह, अप. किण (+ट) से 'हमें', 'तम्हे' आदि के सादृश्य पर बना है।

5) संबन्धवाचक सर्वनाम: इस का रूप इस प्रकार है--

	एकवचन	**बहुवचन**
मूल रूप / अधिकारी -	**जो**	जो (जो-जो)
विकृत / विकारी-	जिस	जिन

'जो': 'जो' की व्युत्पत्ति के संबंध में कोई विवाद नहीं हैं - संस्कृत 'य:' से इसका विकास हुआ है। सं. य: > यो >पा.यो > प्रा. जो, अप: जो > हि. जो।

जिस: जिस का संबंध स्पष्ट ही 'यस्य' से हैं। लेकिन इसके विकास के सम्बन्ध में थोड़ा मतभेद है। उदयनारायण तिवारी के अनुसार –सं. यस्थ > पा यस्थ, प्रा. जस्स >हि. जिस। धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार --सं. यस्स > जस्स, जिस्स > जिस।

भोलानाथ तिवारी के अनुसार -- सं यस्य > पा. यरस > प्रा. यरस > प्रा. जिस्स >हिं, जिस।

जिसे : डॉ. भोलानाथ तिवारी के विचार में इस सर्वनाम का विकास 'तुझे'आदि के सादृश्य पर बना है।

जिन: डॉ. चटर्जी एवं धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार – सं. येषां / यानां > जाण > जिन। डॉ. उदयनारायण तिवारी के अनुसार- सं.येषां > प्रा. जाणं > जिन्हें > हि. जिन। 'जिन' की व्युप्तत्ति के सम्बन्ध में डॉ. भोलानाथ तिवारी के मत, सर्व मान्य है। सं. येषांनाम् > पा. येसानं> जिण, जिण्हं > जिन, जिन्ह > जिना।

जिन्हें : डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने इसे 'जिन' का विकृत रूप माना है। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार यह 'तुम्हे' के सादृश्य पर बना है।

6) निजवाचक सर्वनाम: हिन्दी में निजवाचक सर्वनाम के लिए 'आप' अपना तथा 'आपस' रूप प्रचलित है। आप- इस का विकास सं. 'आत्म' से हुआ है यथा- सं. आत्म > प्रा. अप्प> हि. आप।

अपना: डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार -- सं. आत्मन: > प्रा. अप्पर्णा, अप्पणा, अप. अप्पणा > हि अपन।

आपस : डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार-- सं. आत्मस्य> प्रा. अप्पस्य > हि. आपस।

इस प्रकार हिन्दी सर्वनामों के विकास क्रम को देख सकते हैं।

6.3. कारक की व्युत्पति और विकास क्रम

संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से, क्रिया अथवा दूसरे शब्द के साथ उसका सम्बन्ध सूचित होता है, उसे कारक कहते हैं। कारक चिह्नों को 'परसर्ग' कहते हैं। अंग्रेजी में to, for, from, of, in, on आदि शब्दों का स्थान ही हिन्दी में कारक चिह्नों का है। अंग्रेजी में वे संज्ञा या सर्वनाम के पहले आते हैं। इसलिए वे prepositions कहलाते हैं। हिन्दी में वे संज्ञा या सर्वनाम के पश्चात आते हैं। इसलिए उनको अंग्रेजी विधान में post position कह सकते हैं। हिन्दी के कारक चिह्न या परसर्ग इस प्रकार है- ने, को, के, के लिए, से, का, में पर। इनकी उत्पत्ति और विकास क्रम इस प्रकार हैं: -

'न': यह कर्ता कारक का चिह्न है। इस परसर्ग का व्यवहार खड़ीबोली हिन्दी की एक प्रमुख विशेषता है। पूर्वी हिन्दी में इसका प्रयोग नहीं होता। पश्चिमी हिन्दी की बोलियों में और पंजाबी, गुजराती आदि में 'ने' का प्रयोग 'परसर्ग' के रूप में मिलता है। 'ने' प्रत्यय की उत्पत्ति तथा विकास के सम्बन्ध में विद्वानों के विभिन्न मत है। कामताप्रसाद गुरु के अनुसार-- सं. एन (एक वचन विभक्ति) >प्रा. एण > एन >टि हि. ने। बीरम तथा केलॉग के अनुसार-- सं. लग्यः > प्रा. लग्गिओं> हि .लगि > लै>ले> ने। डॉ. भोलानाथ, तिवारी ने 'ने' की उत्पत्ति संदिग्ध माना है।

डॉ. सुकुमार सेन तथा कुछ अन्य लोग संस्कृत 'कर्णे' से ने का विकास मानते हैं। कर्णे >कने > ने। किन्तु कई बोलियों में 'कने' का प्रयोग 'फेस' के अर्थ में होता है। 'ने' के सम्बन्ध में वस्तुतः कोई भी मत- अर्थ, प्रयोग, ध्वनि विकास- तीनों दृष्टियों से परिसुष्ट नहीं दिखता। अतः 'ने' की व्युत्पत्ति संदिग्ध माननी पड़ती है।

'को': यह परसर्ग कर्म तथा सम्प्रदान कारक का बोधक है। 'को' की व्युत्पत्ति भी काफी विवादास्पद है। ट्रंप के अनुसार 'को' की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'कृत' से हुई है। कृतं > कितो > किओ > को। बीस्म, हार्नले, चटर्जी आदि के अनुसार-'को' का संस्कृत 'कक्ष' से है। कक्षं > ककख > काखं > काहं> कहं> कहुं (अपभ्रंश की उकार बहुला प्रवृत्ति से) > कौ > को। कॉल्डवेल इसे द्रविड 'कु' (कर्म कारक का चिह्न) से जोड़ते हैं।

अर्थ- सम्बंन्ध प्रयोग तथा ध्वनि - विकास तीनों दृष्टियों से बीस्म तथा चटर्जी आदि का मत ठीक लगता है।

'के लिए': सम्प्रदान कारक में 'को' के अतिरिक्त 'के लिए' का भी व्यवहार होता है। इसमें 'के' और 'लिए'' दोनों का विकास अलग- अलग हुआ है।

कुछ लोग 'के' तो संस्कृत 'कृते' से जोड़ते हैं। इसका विकास इस प्रकार है - कृते> किते > किदे > किए > कए > के। कुछ विद्वानों का विचार है कि 'क' का विकास प्राकृत 'केरक' से हुआ है, - केरक > केर > के।

'लिए' की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी विद्वानों में दो मत है-

1. लग्ने > लग्गे > लग्गि > लगे > लिए।

2. सं. लग्नासिमन>अप. लगाहि>लगई >लगे> लए> हिं· लिए।

धीरे धीरेंद्र वर्मा प्राकृत धातु 'ले' से इसका विकास मानते हैं। कुछ हिन्दी बोलियों में 'लिए' के अर्थ में लगे, लागि आदि का प्रयोग आज भी मिलता है। अतः 'लग्ने' से 'लिए' विकास की सम्भावना हो सकती है।

से: इस परसर्ग का प्रयोग 'करण' एवं 'अपादान' दोनों कारकों में होता है। इसकी उत्पत्ति के विषय में विद्वानों के भिन्न भिन्न मत हैं। बीसम के अनुसार –'से' का अर्थ मूलतः 'from' नहीं किन्तु 'with' है। इसी के आधार पर इसे संस्कृत (समं) का विकसित रुप मानते हैं। सं-सम> सों> से रूप में विकसित है।

पृथ्वीराज रासो में इस मत का समर्थन मिलता है- 'कह दूत प्रिथिराज समं'। डॉ. सुनोतिकुमार चटर्जी ने 'से' का विकास 'समहि' से माना है, अर्थात- सं. सम हि > सअइ> से।

'का, की, के'- सम्बन्ध-कारण पुल्लिंग एकवचन में 'का' बहुवचन में 'के' तथा स्त्रीलिंग एकवचन, बहुवचन में 'की' परसर्गों का व्यवहार है। **हार्नले तथा बीम्स** के अनुसार 'का' का विकास क्रम -

सं. कृत > प्रा. करितो, करिओ, केरको > केशओ > केशे > कर> का।

डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार सं. कृत > म. भा. आ. कअ > हि. का।

'के', का, का विकारी रूप है, और 'की' स्त्री-प्रत्यय 'ई' युक्त रूप।

मे, पर :- इन परसर्गो का व्यवहार अधिकरण कारक के अन्तर्गत होता है। 'मैं' का विकास क्रम इस प्रकार है- सं. मध्ये> म.भा. आ. मज्झे >मज्झि >पुरा. हि. मांहि >महि > महँ> मैं>हि में। 'पर' की उत्पत्ति के बारे में दो मत है। केलाँग, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने 'पर' का विकास सं. 'उपरि' से सिद्ध किया है। अपभ्रंश में इसके 'उप्परि', 'उप्पर','उवरि' आदि रूप मिलते है। ब्रजभाषा 'पै' परसर्ग निश्चित ही 'उपरि' के निकला है। यथा- सं. उपरि > परि > पइ >पै।

डॉ. उदयनारायण तिवारी के मतानुसार 'पर' की व्युत्पत्ति सं. 'पपु'> अप-परि से है।

हे, ऐ - ये सम्बोधन - कारक में प्रयुक्त होते हैं। इन्हें परसर्ग नकटकर पूर्वसर्ग करना अधिक समुचित रहेगा। 'हे' सम्बोधन संस्कृत में भी प्रयुक्त होता है।

डॉ. भोलानाथ तिवारी के विचार में 'ऐ' सं. है (संबोधन में प्रयुक्त) से विकसित है- है >ऐ।

परसर्गों में कुछ अन्य शब्दों का प्रकार (या) परसर्गों की तरह प्रयुक्त हिन्दी के अन्य शब्द :

1. अंदर: यह फारसी शब्द है। इसका प्रयोग अधिकरण कारक में होता है। उदा - घर के अन्दर, हमारे अन्दर आदि ।

2. आगे: इसका विकास सं. अग्र से हुआ है। जैसे- अग्रे > अग्गे >आगे। इस परसर्ग का प्रयोग अधिकरण कारक में होता है। इसका प्रयोग सम्बन्ध कारक के चिह्न 'के', 'रे' तथा कर्ताकारक का चिह्न 'ने' के साथ होता है। उदा : घर के आगे। मेरे आगे, अपने आगे।

3. ऊपर: इसका विकास क्रम --उपरि > उप्परि> ऊपरा। इस परसर्ग का प्रयोग भी सम्बन्ध कारक के चिह्न 'के', 'रे' के साथ होता है। उदा- महल के ऊपर, मेरे ऊपर, उनके ऊपर आदि।

(4) ओर: डॉ. भोलानाथ तिवारी ने इसका विकास सं. 'ऊपर' से सिध्द किया है। किन्तु डॉ. द्वारकाप्रसाद सक्सेना की दृष्टि में यह परसर्ग फारसी के 'तरफ' शब्द का हिन्दी अनुवाद है। इस परसर्ग का प्रयोग भी अधिकरण के अर्थ में सम्बन्ध कारक के चिह्नों के साथ होता है। उदा: घर की ओर, हमारी ओर, अपनी आरे आदि।

5) नीचे: इसका विकास सं. नीचैः से हुआ है। इसका प्रयोग अधिकरण के अर्थ में (में, पै, पर) सम्बंध कारक के चिह्नों सहित होता है। उदा: मेरे नीचे, उनके नीचे, कुर्सी के नीचे आदि।

6) पास: इसका विकास क्रम है—पार्श्वे> पस्से-पस्सा>पास। इसका प्रयोग अधिकरण के अर्थ में सम्बन्ध कारक के चिह्नों पहित होता है। उदा : गेरे पास, उनके पास, घर के पास आदि।

7) पीछे: इसका विकास क्रम है- पश्चे > पच्चे >पिच्छे>पीछे। इसका प्रयोग अधिकरण के अर्थ में सम्बन्ध कारक के चिह्नों के साथ होता है। उदा: मेरे पीछे, घर के पीछे आदि।

8) बाहर: इसका विकास सं 'बहिर' से हुआ है। इस परसर्ग का प्रयोग भी अधिकरण के अर्थ में सम्बन्ध कारक के चिह्नों सहित होता है। हदा : घर के बाहर, शहर के बाहर आदि।

9) मारे : इसका विकास क्रम है- मारितेन> मशिएण> मारिए> मारे। इसका प्रयोग करण कारक के अर्थ में सम्बन्ध कारक के चिह्नों सहित होता है। भय के मारे, जाड़े के मारे, गर्मी के मारे आदि।

10) भीतर: इसका विकास क्रम है- सं. 'अभ्यन्तर' से हुआ है। यथा- अभ्यन्तर > भिन्तर > भित्तर >भौतिर >भीतर। इसका प्रयोग भी अधिकरण के अर्थ में सम्बन्ध कारक के चिह्नों सहित होता है। उदा : घर के भीतर, मेरे भीतर आदि।

6.4. सारांश

हर एक भाषा में संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया आदि भाषा भाग होते हैं। हिन्दी के भाषा भागों में सर्वनाम एक है जो संज्ञा के बदले वाक्य में प्रयुक्त होता है। संज्ञा की पुनरिक्ति को रोकने के लिए सर्वनाम का उपयोग करते हैं। ऐसे ही वाक्य में एक शब्द से दूसरे शब्द का जो या क्रिया के साथ जो सम्बन्ध रहता है। उसको सूचित करने वाले शब्द को कारक कहते हैं। सर्वनाम और कारक दोनों हिन्दी भाषा के व्याकरण के मुख्य भाग है। इनकी उत्पत्ति और विकास क्रम संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओं से हुआ है।

शब्द सूची: सं--- संस्कृत

प्रा---प्राकृत

पा---पालि

अप - अपभ्रंश

म.भा. आ : मध्य भारतीय आर्य।

6.5. बोध प्रश्न

1) हिन्दी के सर्वनाम कितने प्रकार है? उनकी उत्पत्ति और विकास क्रम के बारे में चर्चा कीजिए।

2) 'कारक' का अर्थ क्या है? हिन्दी कारकों के विकास क्रम पर चर्चा कीजिए।

3) हिन्दी में परसर्गों की तरह प्रयुक्त होने वाले शब्द क्या- क्या है? उनके बारे में लिखिए।

6.6. सहायक ग्रंथ

1. हिन्दी भाषा – डॉ. भोलानाथ तिवारी।

2. आधुनिक भाषा विज्ञान - भोलानाथ तिवारी।

3. हिन्दी भाषा के इतिहास - डॉ. धीरेन्द्र वर्मा।

डॉ. सूर्य कुमारी पी.

7. भारत की प्राचीन लिपियाँ- खरोष्ठी और ब्राह्मी देवनागरी लिपि का उद्भव और विकास

7.0. उद्देश्य

पिछले अध्यायों में हम विश्व भाषाएँ, भारतीय प्राचीन आर्य भाषाओं के उद्भव और विकास, हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास और बोलियों के बारे में विस्तृत चर्चा कर चुके हैं। इस इकाई में प्राचीन और आधुनिक लिपियों के बारे में कुछ चर्चा करेंगे। इस अध्याय को पढ़ने के बाद हम-

- प्राचीन लिपि खरोष्ठी के बारे में,

- प्राचीन लिपि ब्राह्मी के बारे में,

- हिन्दी की देवनागरी लिपि का उद्भव और विकास के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

रूपरेखा

7.1. प्रस्तावना

7.2. लिपि का विकास

7.3. खरोष्टी लिपि

7.4. ब्रार्मी लिपि

7.5. देवनागरी लिपि

7.6. सारांश

7.7. बोध प्रश्न

7.8. सहायक ग्रंथ

7.1. प्रस्तावना

हिन्दी भाषा की लिपि देवनागरी लिपि है? भाषा का उच्चरित रूप बोलने की विधि है यह तात्कालिक होता है। लिखित रूप भाषा को अभिव्यक्तियों को स्थायित्व प्रदान करता है। भाषा को, अभिव्यक्तियों को स्थाइत्व प्रदान करने के लिए लिपि की आविष्कार किया गया है। भाषा ध्वनि समूहों की अभिव्यक्ति हैं तो लिपि प्रतीक और चिह्नों में प्रयुक्त होने वाली अभिव्यक्ति है।

भारत में लिपि का आविष्कार कब से हुआ किस प्रकार हुआ कहाँ से हुआ इन सब को जानना अनिवार्य है। इन विषयों के बारे में देशी और विदेशी भाषा विज्ञानियों ने विस्तृत अध्ययन किया है। लिपि का आविष्कार या उद्भव भाषा के उद्भव के बहुत समय बाद हुआ है। लिपि का आविष्कार सचमुच मनुष्य की एक बहुत बड़ी उपलब्धि है।

भारत में लिपि का प्रचार तथा विकास कब से हुआ, इसके सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद हैं। पाणिनी की अष्टाध्यायी में लिपि, लिपिकार आदि शब्द है, जिससे स्पष्ट होता है कि पाणिनी के समय तक लिखने का प्रचार अवश्य हो चुका था। अथर्ववेद में, वैदिक साहित्य में लेखन होने का आभास यत्र-तत्र मिलते हैं।

7.2. लिपि का विकास

भारत में लिपि का प्रचार कब हुआ और उसका मूल स्तोत कहाँ था, इसे लेकर विद्वानों में मतभेद है। अधिकांश यूरोपीय विद्वान यह मानते रहे हैं कि लिपि का प्रयोग और विकास भारत की अपनी चीज नहीं है, साथ ही यहाँ लिपि का प्रयोग काफ़ी बाद में हुआ है। लिपियों के विकास की परंपरा प्रायः क्रमानुसार होती है, उसमें सबसे पहले चित्रलिपि, फिर सूत्रलिपि, फिर प्रतीकात्मक लिपि तथा अक्षरात्मक लिपि से होते हुये अंत में वर्णनात्मक लिपि के विकास को माना गया है। भाषा को स्थायित्व बनाने की दिशा में मनुष्य के द्वारा की गई कोशिशों में 'चित्रलिपि' का निर्माण प्रथम माना जाता है।

इसका रूप संसार के अनेक स्थानों पर प्राप्त प्राचीन शिलाखण्ड, पशु-धर्म, भोज पत्र आदि पर देखने को मिलता है। पर चित्र लिपि की अपनी सीमाएँ एवं त्रुटियाँ थी। वह केवल स्थूल भौतिक वस्तुओं को अंकित करने में काम आती थी। संतोष, प्यार, गुस्सा, निराशा जैसे भावों का संप्रेषण उस लिपि के माध्यम से नहीं किया जा सकता था। इन त्रुटियों को सुधार लाने के लिए भाव- आविष्कार किया गया था।

भाव संकेत लिपि को दूसरी लिपि के रूप में स्वीकार किया गया है। इसमें वस्तुओं के यथार्थ चित्र न खींचकर उनके भावों को प्रकट करने के लिए कुछ सीधी- टेढी रेखाएं खींची जाती थीं। भावलिपि में चित्रलिपि की अपेक्षा लाघव एवं संक्षिप्तता आई। पर यह सब के लिए आसानी से समझी जाने वाली परिपूर्ण लिपि नहीं थी। आगे चलकर मानव अपनी शोध-बुद्धि से आगे चलकर 'ध्वनिलिपि' को खोज डाली। इस लिपि में भाषा की प्रत्येक ध्वनि के लिए अलग-अलग वर्ग प्रतीक निश्चित्व किये गये थे। इस दृष्टि से यह आधुनिक अर्थ में प्रथम लिपि भी कह गई है लिपि के विकास में ध्वनिलिपि सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जाती है। इस के बाद अक्षरात्मक लिपि का विकास हुआ।

अक्षरात्मक लिपि, वर्णनात्मक लिपि ही विकसित व वैज्ञानिक रूप है। अक्षरात्मक लिपि की यह विशेषता होती है कि इसमें प्रत्येक स्वर की मात्रा तथा उसे सूचित करने वाला स्वतंत्र चिह्न निश्चित होते हैं। इनके उपयोग व्यंजन तथा स्तर के रूपों को स्वतंत्र रूपों में दिखाया जाता है। इसके अतिरिक्त भाषा के व्याकरणिक विश्लेषण की जो हमारी समृद्ध परंपरा मिलती है, वह भी लेखन के बिना संभव नहीं। यों तो वैदिक साहित्य भी लेखन के होने के आभास यंत्र-तंत्र मिलते हैं। ऐसी स्थिति में यह मानना पड़ेगा कि भारत में लेखन का ज्ञान और प्रयोग बहुत बाद का नहीं है, जैसा कि विदेशी विद्वान मानते रहे हैं। लेकिन भारत में लिपि की स्थिति प्राचीन काल से मिलते हैं। भारत में प्राचीन लिपियाँ दो मिलती हैं। ब्राह्मी, खरोष्ठी।

7.3. खरोष्ठी लिपि

खरोष्ठी लिपि के प्राचीनतम लेख शहबाजगढ़ी और मनसेरा में मिले हैं। इस लिपि की उत्पत्ति के संबंध में भी विद्वानों में विभेद है। कुछ लोग इसे विदेशी 'समेटिक अमेरिक' से विकसित हुई लिपि मानते हैं तो और कुछ लोग इसे शुद्ध भारतीय लिपि मानने के पक्ष में है। डॉ. बुलर, श्री गौरी शंकर हीराचंद ओझा आदि इसे विदेशी उत्पत्ति मानते है तो, डॉ. राजबली पाण्डे इसे भारतीय की लिपि मानते हैं।

आधुनिक काल के भाषा विज्ञानियों के शुद्ध अनुसार यह लिपि विदेशी लिपि थी। बहुत से विदेशी राजाओं सिक्कों तथा शिलालेखों आदि में यह लिपि प्रयुक्त हुई है। चौथी सदी ई.पू. से तिसरी सदी ई. तक इस लिपि की सामग्री प्राप्त हुई है। चीनी साहित्य में 7वीं सदी तक 'खरोष्ठी' नाम मिलता है। 'खरोष्ठी' लिपि के नाम के सम्बन्ध में विविध मत प्रचार में हैं।

1. चीनी विश्वकोश के अनुसार किसी 'खरोष्ठ' नामक व्यक्ति ने इसे बनाया था।

2. 'खरोष्ठ' नामक सीमाप्रान्त से अर्धसभ्य लोगों में प्रचलित होने के कारण इस लिपि का नाम 'खरोष्ठी' कहलाया ।

3. इस लिपि का केन्द्र कभी मन्य ऐशिया का एक प्रान्त 'काशगर' था। 'खरोष्ठ' काशगर का ही संस्कृत रूप हैं।

4. यह लिपि गदहे की खाल पर लिखी जाती थी। ईरानी में गदरे को 'खस्पोश्त' कहते हैं। 'खस्पोश्त' का अपभ्रंश रूप 'खरोष्ठ' है, उसी के आधार पर यह लिपि 'खरोष्ठी' कहलायी।

5. डॉ. प्रजलुस्की के अनुसार 'गदहे' की खाल पर लिखी जाने से यह लिपि 'खरपुष्ठी' और फिर 'खरोष्ठ' कहलायी ।

6. अमेरिक का कोई शब्द 'खरोष्ठ' था। उसी की भ्रामक व्युत्पत्ति के आधार पर संस्कृत रूप 'खरोष्ठ' बना है।

7. डॉ. राजबली पाण्डेय के अनुसार इस लिपि के अधिक अक्षर गदहे के ओठ की तरह बेढंगे हैं। इस लिए 'खरोष्ठी' नाम पड़ा।

8. डॉ. चटर्जी के अनुसार हिब्रू भाषा में खर्शशोध का अर्थ लिखावट है। उसी से लिए जाने के कारण इस लिपि का नाम 'खरोशोथ' पड़ा। 'खरोशोथ' का संस्कृत रूप 'खरोष्ठ' है, उसी आधार पर यह लिपि 'खरोष्ठी' कहलाई।

विकास : खरोष्ठी लिपि के उद्भव के सम्बन्ध में प्रमुख रूप से दो मत हैं-

(क) जी. बूलर का कहना है कि खरोष्ठी लिपि आर्मेइक लिपि की भाँति दाएँ से बाएँ को लिखी जाती है। खरोष्ठी लिपि के 11 अक्षर बनावट की दृष्टि से आर्मेइक लिपि के 11 अक्षरों से बहुत मिलते जुलते हैं। दोनों लिपियों के उन 11 अक्षरों की ध्वनि भी एक ही प्रकार की है। आर्मेइक लिपि खरोष्ठी से पुरानी है और तक्षशिला में आर्मेइक लिपि में प्राप्त शिलालेख से यह स्पष्ट होता है कि भारत से आर्मेइक लोगों का सम्बन्ध था। इन चारों विषयों से बुलर स्पष्ट करते हैं कि खरोष्ठी लिपि आर्मेइक से ही सम्बद्ध है और भारतीय लिपियों के प्रसिद्ध विद्वान डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द औझा तथा हिरिंजर भी बूलर मत का समर्थन करते हैं।

(ख) खरोष्ठी- शुद्ध भारतीय लिपि है- यह केवल तर्क पर आधारित है। डॉ. राजबली पांडेय इसका समर्थन किया था ।

विशेषताएँ: खरोष्ठी लिपि उर्दू लिपि की भाँति पहले दायें से बायें की ओर लिखी जाती थी, पर बाद में प्राय: ब्राह्मी लिपि के प्रभाव के कारण यह भी नागरी आदि भारतीय लिपियों की भाँति बायें से दायें की ओर लिखी जाती है। इस लिपि में वर्णों की संख्या केवल 37 हैं, जो आर्य भाषा की समस्त ध्वनियों को अंकित करने में असमर्थ है। भारत में खरोष्ठी लिपि को न अपनाने का यह भी एक प्रमुख कारण रहा होगा। उर्दू लिपि की भाँति इसे भी लोगों को अनुमान के आधार पर पहुंचा पडता होगा। मात्राओं के प्रयोग की इस लिपि में कमी है। खरोष्ठी में स्वरों तथा मात्राओं में खास कर ह्रस्व तथा दीर्घ स्वरों (आई, ऊं, ऐ, औ) का इसमें सर्वदा अभाव है। संयुक्त स्वर तो इस लिपि में प्राय: नहीं के बराबर है।

खरोष्ठी लिपि की विशेषताएँ तथा भारतीय आर्य-भाषाओं और संस्कृत की प्रकृति पर विचार करने के उपरांत, भारत-विज्ञानियों का यह मत है कि खरोष्ठि को भारत की लिपि मानना युक्ति संगत नहीं है। उनका कहना है कि खरोष्ठी एक विदेशी लिपि ही है, कुछ राजनैतिक कारणों से पंजाब तक इसका प्रचलन- प्रसरण हो गया था। आम लोगों के बीच प्रचलित होते रहने के कारण अशोक ने अपने अभिलेखों में इस लिपि का प्रयोग कराया। परंतु इसे पूर्णतः स्वदेशी लिपि नहीं कहा जा सकता।

7.4. ब्राह्मी लिपि

ब्राह्मी लिपि अपनी राष्ट्रीय लिपियों और कुछ विदेशी लिपियों की जननी है। यह लिपि प्राचीन काल में भारत की सर्वश्रेष्ठ लिपि रही है। इसका प्रचार भारत में ईसा की तीसरी सदी तक रहा। इस के प्राचीनतम नमूने बस्ती जिले में प्राप्त पिपरावा के स्थूप में तथा अजमेर जिले के बडली (बर्ली) गाँव के शिलालेख में मिले हैं।

ब्राह्मी नाम का आधार

ब्राह्मी लिपि के नाम पड़ने पर विविधमत हैं। यह लिपि प्राचीन होने के कारण इसके निर्माता के बारे में कुछ ज्ञात नहीं है। किन्तु 'धार्मिक' भावना से विश्व की अन्य वस्तुओं की भाँति 'ब्रह्मा' को इस लिपि का निर्माता मानते रहे। इसी के आधार पर 'ब्रह्मी' कहा गया है। चीनी लोगों की मान्यता है कि 'ब्रह्मा' नामक किसी आचार्य से निर्मित होने के कारण, यह 'ब्राह्मी' लिपि कहलाती है।

ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति :

ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति विवादास्पद है।

1. बूलर तथा वेबर आदि इसे विदेशी लिपि से निकली मानते हैं।

2. एडमई थामस के अनुसार यह लिपि द्रविडों की बनाई हुई है।

3. शाम शास्त्री पूजा में प्रयुक्त सांकेतिक चिह्नों से ब्राह्मी लिपि का विकास मानते हैं।

4. कनिंघम आदि के अनुसार आर्यों ने किसी प्राचीन चित्रलिपि के आधार पर इस लिपि को बनाया था।

5. डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार हडप्पा-मोहनजोदडो में प्राप्त लिपि के आधार पर इस लिपि का विकास हुआ था।

6. इनमें कोई भी पक्ष सर्व सम्मत नहीं है। ऐसी स्थिति में ब्राह्मी की उत्पत्ति का प्रश्न अभी भी विवादास्पद है।

ब्राह्मी से विकसित भारतीय लिपियाँ

भारत की प्राचीन लिपि ब्राह्मी का प्रयोग 15 वीं सदी ई. पू. से लेकर लगभग 350 ई. तक होता रहा। इसके बाद इसकी दो शैलियों का विकास हुआ।

1. उत्तरी शैली

2. दक्षिणी शैली

उत्तरीशैली से निम्न लिखित लिपियों का विकास हुआ है-

गुप्त लिपि: इस लिपि का नाम गुप्तवंशी शासकों के लेखों में प्रयुक्त होने के कारण गुप्तलिपि पड़ा।

कुटिल लिपि: अक्षरों की आकृति कुटिल (टेढ़ी) होने के कारण इसका नाम कुटिल लिपि पड़ा। इसका विकास गुप्त - लिपि से माना जाता है। कुटिल - लिपि से नागरी और शारदा लिपियों का विकास माना जाता है।

प्राचीन नागरी : इसे दक्षिण में नंदीनागरी भी कहते थे। प्राचीन नागरी की पूर्वी शाखा से बँगला लिपि का और पश्चिमी शाखा से महाजनी, राजस्थानी, गुजराती, कैथी आदि लिपियों का विकास हुआ।

शारदा लिपि: इस लिपि का प्रसार कश्मीर और पंजाब प्रांत में पाया जाता है। वर्तमान कश्मिरी, टकारी तथा गुरुमुखी लिपियों की उत्पत्ति शारदा लिपि से हुई है।

दक्षिणी शैली से (1) पश्चिमी, (2) मध्य प्रदेशी, (3) तेलुगु - कन्नड (4) ग्रन्थ-लिपि, (5) तमिल-लिपि (6) कलिंग लिपि का विकास हुआ।

देवनागरी लिपि का उद्भव कुटिल-लिपि से होने की बात बहुत से विद्वानों ने स्वीकार की है। ब्राह्मी लिपि से कुटिल-लिपि का विकास चौथी शताब्दी में, और इस कुटिल - लिपि से नौवीं शताब्दी के बाद, प्राचीन नागरी लिपि का विकास हुआ। प्राचीन नागरी से ही आधुनिक काल की नागरी या देवनागरी, गुजराती, महाजनी आदि लिपियों का विकास हुआ। इसलिए यह कहा जा सकता है कि देवनागरी ब्राह्मी का ही परिवर्तित रूप है।

7.5. देवनागरी लिपि

सबसे पहले देवनागरी का प्रयोग 8वीं शताब्दी में गुजरात के राजा जयभट्ट के एक शिला-लेख में देखा गया है। बाद में राष्ट्रकूट राजाओं के तथा नवीं शताब्दी के विजयनगर तथा कोंकप के राजाओं ने भी अपने राजकर्यों में देवनागरी का प्रयोग करने का उल्लेख मिलता है। 10 वीं शताब्दी के बाद देवनागरी का प्रसारण - क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया। भारत के सभी राज्य उत्तर-प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात, नेपाल आदि के साथ-साथ पूरे भारत की प्रधान लिपि बन गई है। हिन्दी, मराठी, संस्कृत और हिन्दी की समस्त बोलियाँ इसी लिपि में लिखी जाती है। देवनागरी को आज राष्ट्रलिपि का पद प्राप्त हुआ है।

देवनागरी का नामकरण : 'देवनागरी' का नाम कैसे पड़ा, इस विषय पर विवाद हैं।

1. गुजरात का 'नागर' ब्रह्मणों द्वारा विशेष रूप से प्रयुक्त होने के कारण यह नागरी लिपि कहलाई।

2. प्रमुख रूप से नगरों में प्रचलित होने के कारण यह लिपि 'नागरी' कहलाई।

3. कुछ विद्वानों की मान्यता हैं कि ललितविस्तार में उल्लिखित 'नाग' लिपि टी 'नागरी' है, 'नाम' से 'नागर' का सम्बन्ध है।

4. तान्त्रिक चिह्न 'देवनागर' से साम्य रखने के कारण यह लिपि 'देवनागरी' और फिर नागरी कहलाई।

5. 'देवनागर' (देवताओं का नगर) 'काशी' में प्रचार के कारण यह लिपि 'देवनागरी' कहलाई।

6. चतुर्भुज आकृतियाँ (प, भ, माग आदि) रहने के कारण स्थापत्य शैली के अनुसार यह 'नागरी' लिपि कहलाई है।

इन सब मतों में अधिकतर विद्वानों पहले मत अर्थात नगर से नागरी शब्द के बनने का ही समर्थन किया है।

नागरी लिपि का विकास :

नागरी लिपि के लगभग एक हजार वर्षों के जीवन-

काल में प्राय: सभी अक्षरों के स्वरूप में न्यूनाधिक रूप में परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों के अलावा कुछ उल्लेखनीय बातें हैं।

1. सबसे महत्वपूर्ण विषय है, फारसी लिपि का प्रभाव। नागरी लिपि में नुक्ते या बिन्दु का प्रयोग फारसी लिपि का ही प्रभाव है। उदा : ड-ड़, ढ- ढ़, के-क़, ख- ख़, ग-ग़, ज-ज़, फ-फ़।

2. नागरी लिपि पर मराठी लिपि का भी प्रभाव है। पुराने अ, ळ आदि के स्थान पर अ, ल; या आ, भी, अ आदि स्वरों का रूप प्रयुक्त हुआ है।

3. नागरी लिपि को कुछ लोग शिरोरेखा के बिना लिखते हैं। यह गुजराती लिपि का प्रभाव हैं। गुजराती शिरोरेखा विहीन लिपि है।

4. नागरी लिपि में चन्द्रबिन्दु तो था ही- उदा: ऊँ। अंग्रेजी भाषा-शब्दों को हिन्दी में लिखने के लिए अर्धचन्द्र का प्रयोग होने लगा है। office – ऑफिस, college – कॉलेज, Doctor – डॉक्टर।

5. पूर्ण विराम को छोड़ कर अन्य सभी विराम चिह्न नागरी लिपि में अंग्रेजी के ही प्रयुक्त होने लगे।

6. उच्चारण के प्रति सतर्कता के कारण कभी-कभी ह्रस्व 'ए', ह्रस्व 'ओ' के घोतक के लिए अब 'ऐ' और 'औ' का

प्रयोग भी होने लगा है।

इस प्रकार नागरी लिपि पर फारसी, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी, ध्वनियों की सतर्कता आदि का प्रभाव है। अतः नागरी लिपि में न्यूनाधिक रूप में परिवर्तन और विकास हुआ है।

देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता विशेषताएँ

किसी भी भाषा की उच्चरित समस्त ध्वनियों को अंकित करने की क्षमता रखने वाली 'लिपि' ही पूर्ण और वैज्ञानिक कहलाएगी। संसार की अन्य लिपियों की तुलना में देवनागरी की पूर्णता एवं वैज्ञानिकता सर्वोपरी है। इस की वैज्ञानिकता और विशेषताएँ इस प्रकार है-

1. इस लिपि में इतने ध्वनिभिन है कि संसार की किसी भी भाषा की ध्वनियों को उच्चरित और लिखित रूप में अंकित कर सकते हैं।

2. देवनागरी लिपि में वर्ण उच्चारण के अनुरूप होते हैं। इसमें जो लिखा जाता है वहीं पढ़ा जाता है और जो पढ़ा जाता है वही लिखा जाता है। इसमें रोम और अरवी लिपि की तरह लेखन और उच्चरण में भेद नहीं है।

3. स्वर और व्यंजन अलग-अलग है। स्वरों में ह्रस्व और दीर्घ साथ-साथ हैं- अ-आ, ई-ई. उ-ऊ। पश्चात संयुक्त स्वर आते हैं। व्यंजनों में वर्ग, घोष- अघोष, अल्पप्राण- महाप्राण, अनुनासिक आदि का वैज्ञानिक विवरण है।

4. ध्वनि के अनुरूप लिपि-चिट्नों के नाम:

नागरी लिपि में लिपि-चिह्न जिस ध्वनि का द्योतक है, उस का नाम भी वही है, जैसे का, ग, ख, म आदि। रोमन लिपि में चिह्न और ध्वनि ठीक सम्बद्ध, नहीं बैठते याद रखना कठिन है। यह दुविधा देवनागरी लिपि में नहीं देता है।

5. ह्रस्व तथा दीर्घ स्वर के लिए स्वतंत्र चिह्न : नागरी लिपि में ह्रस्व उच्चारण और दीर्घ उच्चारण के लिए अलग-अलग चिह्न है। उदा : आम, इमली, कौन, लड़का माँ।

6. प्रत्येक उच्चरित ध्वनि के लिए अलग-अलग चिह्न है :

देवनागरी लिपि में एक-एक ध्वनि के लिए अलग-अलग चिह्न है। रोमन लिपि में एक ध्वनि के लिए अनेक संकेतों का प्रयोग किया जाता है। जैसे- 'के' के लिए k (king), C (Cat): & (Queen) ch. (chemistoy) आदि। उसी प्रकार 'U' से बने शब्द 'but' और 'Put' में भी यह अलगाव को देखा जा सकता है। कहने का तात्पर्य है कि एक लिपि संकेत से अनेक ध्वनियों की अभिव्यंजना और एक ध्वनि के लिए अनेक संकेतों का प्रयोग लिपि-संबंधी बहुत बड़ी कमी मानी जाती है। देवनागरी में इस तरह की स्थिति विद्यमान नहीं है।

7. स्वरों के मात्रा-चिह्न व्यंजनों पर भी लगते हैं।

8. मात्रा। नागरी लिपि में स्वर यदि स्वतंत्र रूप से आते हैं, तो पूरे वर्ण- चिह्न का प्रयोग होता है। किन्तु उच्चारण में कोई अन्तर नहीं होता।

स्वतन्त्र रूप	व्यंजन के साथ
आम	मान
इमली	किला
ऊन	झूली
ऐनक	**मै**ना
औषध	कौन

9. पठनीयता तथा सुग्राय

नागरी लिपि में सुगम पठनीयता है क्योंकि ध्वनि और लिपि में सम्बद्धता तथा सतर्कता है। अतः इस में सुग्राह्यता का सौलभ्य होता है। उदाहरण के लिए 'महाभारत कथा' ले लें। इस शब्द का उच्चारण अंग्रेजी (रोमन) लिपि में Mahabharath Katha के रूप में लिखा जा सकता है। लेकिन पठनीयता मैं आकर -

महाभाराठा कहा

माहभरठ कथा

महभरठा काठ

महभराठ कोठ

माहाभाराठ काठा। आदि और भी अनेक विधानों में लिखा जा सकता है।

सीमाएँ : सीमाएँ से आशय है कमियाँ या अवगुण। देवनागरी लिपि की इन विशेषताओं के बावजूद भी वैज्ञानिक लिपि की कसौटी पर इस लिपि को देखें तो इसकी भी कुछ कमियाँ हमारे सामने आती है।

1. वैज्ञानिक लिपि को वर्णनात्मक होना चाहिए, आक्षरिक नहीं। अर्थात उसके लिपि-चिह्न भाषा में प्रयुक्त हर व्यंजन तथा हर स्वर के लिए अलग अलग चाहिए। उदा : क, ख, ग आदि व्यंजन - चिह्नों में स्वर मिले हुए हैं। अर्थात यह वर्णनात्मक नहीं है।
2. लिपि में भाषा - विशेष में प्रयुक्त हर ध्वनि के लिपि-चिह्न होने चाहिए। नागरी लिपि में दंतोष्ठ्य व, न्ह, म्ह, ल्ह आदि के लिए अलग चिह्न नहीं है।
3. एक चिह्न से केवल एक ध्वनि व्यक्त होनी चाहिए, एकाधिक नहीं। नागरी में व से दो ध्वनियाँ व्यक्त होती है ह्योष्ठ्य दंतोष्ठ्य।
4. एक ध्वनि के लिए केवल एक लिपि चिह्न होना चाहिए, एकाधिक नहीं। हिन्दी भाषा की दृष्टि से एक ही ध्वनि के लिए नागरी में रि-ऋ, श-ष चिह्न है।
5. लेखन में लिपि चिह्नों को उसी क्रम से आना चाहिए जिस क्रम से उनका उच्चारण किया जाता हो। नागरी में इ, उ, ऊ, ऋ, प्र, ऐ की मात्राएँ यथाक्रम नहीं आतीं।

6. दो चिह्नों को एक पढ़े जाने का श्रम लिपि में नहीं होना चाहिए। नागरी में है: घ-ध, म-भ, रा-ण (आधा ण) ख-ख में श्रम की गुंजाइश है।

नागरी लिपि में सुधार: अन्य किसी लिपि की तुलना में देवनागरी लिपि अधिक वैज्ञानिक सिद्ध होने पर भी, पूर्णत: दोष-मुक्त नहीं है। समय-समय पर इन कमियों के निवारण करते हुए सुधार लाने का प्रयत्न किया जा रहा है। देवनागरी लिपि में सुधार की दिशा में व्यक्तिगत प्रयासों के साथ-साथ संस्थागत प्रयास भी किए गए। 1935 में "हिन्दी साहित्य सम्मेलन" के इंदौर अधिवेशन में, जिसमें गाँधी जी सभापति थे, "नागरी लिपि सुधार समिति" बनाई गई जिसके संयोजक काका कालेलकर थे। इस समिति ने इन सुझावों को बताया है-

1. नागरी लिपि से शिरो- रेखा को हटा देना चाहिए। लिखने में भले ही न हो किंतु छपाई में रहनी चाहिए। भ, म, घ, ध आदि अक्षरों में शिरोरेखा लगाई जा सकते हैं।

2. मात्रा के स्वरूप और स्थान में परिवर्तन होना चाहिए। 'इ' की मात्रा 'P' बाई ओर ही रहे 3 (७), 33(ु) ऋ (c) ए (4) से (*) ओ (7) औ (+) की मात्राएँ और अनुस्वार (1) चिह्न व्यंजन के बाद हटाकर अलग से लगाए जाएँ।

3. रेफ के 'र' का स्थान उच्चारण के अनुकूल ही रखना चाहिए। जैसे- मर्म, कर्म, आदि।

ए, ऐ की मात्राएँ, उ, ऊ, ऋ की मात्राएँ अलग से लगानी चाहिए? उदा: केली, 'पूजा, 'गुं जन' (पूजा, गुंजन) अनुस्वार और अनुनासिक को भी अलग से लगाना चाहिए उदा : सं सार, अंश, आदि।

4. संयुक्ताक्षर में 'र' की बनावट सामान्य होनी चाहिए - उदा. टरेम, पत्र, मुद्दा, बुद्धि, प्राप्त आदि।

5. दक्षिण की लिपियों में पाये जाने वाले ह्रस्व 'ए' और 'ओ' के लिए अलग लिपि चिह्न बनाना चाहिए।

6. पूर्ण अनुस्वार ध्वनि के लिए '0' चिह्न अक्षर के बाद लगाना चाहिए। उदा- ग.ध (गंध) प.थ (पंथ)।

7. अनुनासिक के लिए '0' का उपयोग होना चाहिए। उदा- आंसू, चांद आदि।

8. मुद्रण में अक्षर के नीचे फ़ारसी ध्वनियों जैसी बिंदी होगी तो इसका यह अर्थ होगा कि इसका उच्चारण मूल-ध्वनि से कुछ भिन्न है। उदा: आज़ादी, जोड़।

9. विराम चिह्न पूर्ववत रहे।

10. प्रचलित 'ख' के स्थान पर गुजराती 'ख' को अपनाया जाए।

11. खड़ी पाई वाले वर्णों के साथ संयुक्ताक्षर बनाते समय, वर्णों का पाई (मःम्, भ-भ् , ख-ख्) हटाकर संयुक्ताक्षर बनाना चाहिए। जिन वर्णों में खड़ी पाई नहीं है वहाँ संयोजक चिह्न (-) मानना चाहिए। उदा: पद्-यानुवाद, विद-यालय आदि।

काका कालेकर समिति द्वारा सूचित उपर्युक्त सुझाव लिपि- सुधार की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसके बाद उत्तर प्रदेश की 'नरेंद्रदेव' समिति ने सन् 1943 के लखनऊ सम्मेलन के कुछ सुधार प्रस्तुत किए है। यथा

1. वर्णमाला के अंतर्गत 15 स्वरों को स्थान दिया जाय- स्वरों में 'ऋ', 'क', 'ह' को भी रखे गये थे। कुल मिलाकर 36 व्यंजनों को स्थान दिया गया। क्ष, त्र, ज्ञ और ष को भी रखें गये थे।

2. संयुक्ताक्षर में व्यंजन ऊपर-नीचे न लगाकर आगे-पीछे जोड़ने का सुझाव दिया गया था। उदा: पक्का, गड्ढा आदि ।

3. 'ते' और 'त्र' का रूप त्त और त्र में परिवर्तित होने का सुझाव दिया गया था।

4. स्वर के ऊपर अनुनासिक ध्वनि को सूचित करने के लिए (.) बिंदी का प्रयोग और व्यंजन के ऊपर की अनुनासिकता के लिए '0' चिह्न का प्रयोग करने का सुझाव दिया गया था। उदा गूंग, चांद।

नरेंद्र देव समिति द्वारा दिए गए सुझावों को उस सम्मेलन में स्वीकारा गया था।

नागरी अंक : उर्दू, रोमन आदि विदेशी लिपियों को छोड़कर, नागरी तथा शेष सभी लिपियों (बँगला, गुजराती आदि) के अंक ब्राह्मी के अंकों से विकसित है, इन अंकों की दो शैलियों के प्रयोग मिलते हैं-

प्राचीन शैली: इस शैली का प्रचार अशोक के समय से लेकर 4वीं सदी तक था। इस शैली के अंक अपनी आकृति में तो नवीन शैली से भिन्न थे ही, एक मुख्य और महत्वपूर्ण अंतर यह था कि पहले लोगों को शून्य का पता नहीं था। अतः उसका व्यवहार नहीं होता था। इसका परिणाम यह था कि 1 से 9 तक की संख्याओं की तरह ही 10, 100, 1000 के लिए अलग-अलग चिह्न थे। अर्थात 1, 2, 3 आदि के साथ शून्य लगाकर ये संख्याएँ नहीं लिखी जाती थीं।

नवीन शैली : अंकों की नवीन शैली का प्रयोग 4 वीं सदी से होने की संभावना है, यद्यपि शिलालेख आदि में प्राचीन शैली का प्रयोग इसके बाद तक भी चलता ही रहा। शून्य भारतीय गणितज्ञों की अभूतपूर्व खोज थी जो 4वीं 5वीं सदी में हुई होगी। हमारे लिए यह गर्व का विषय है कि पूरे विश्व को शून्य की संकल्पना देने का श्रेय भारत का है। भारतीयों द्वारा शून्य के प्रयोग ने पूरे विश्व के मणितीय ज्ञान में क्रांति ला दी। भारत से नवीन शैली का प्रयोग अरबों ने सीखा और फिर उनसे यूनान ने और फिर यूनानियों से पूरे यूरोप ने। प्राचीन शैली में 10, 20, 30 आदि के लिए जो अलग चिह्न थे, नवीन शैली में उन्हें छोड़ दिया गया और शून्य की सहायता से 1, 2, 3 आदि से संख्याएँ लिखी जाने लगीं।

7.6.सारांश

मौखिक अथवा उच्चरित भाषा को स्थायित्व प्रदान करने वाली लिखित भाषा का आधार लिपि है। लिपि का विकास मनुष्य के महत्तम बौद्धिक उपलब्दियों में से एक है। लिपि के माध्यम से वह अपने ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा विचारात्मक अभिव्यक्तियों को अंकित कर पाता है आने वाली पीढ़ी के लिए उसे धरोहर के रूप में सुरक्षित कर पाता है। इस इकाई में हम प्राचीन लिपियाँ खरोष्ठी, ब्राह्मी के बारे में जानकारी प्राप्त कर चुके है। देवनागरी लिपि का उद्भव और विकास कम के बारे में जान चुके हैं।

इतिहास के अनुसार ईसा की 8 - 11 वीं सदी में हम नागरी लिपि को पूरे देश में व्याप्त देखते हैं। उस समय यह एक सार्वदेशिक लिपि थी। जहाँ भी संस्कृत की पुस्तकें प्रकाशित होती थी, वहाँ नागरी लिपि का प्रयोग होता था। इस नागरी लिपि के उदय के साथ ही भारतीय इतिहास व संस्कृति के एक नए की शुरुआत होती है। भारत इस्लाम के संपर्क में आता है और 13वीं सदी से भारत में इस्लामी शासन शुरू हो जाता है।

भारतीय समाज व बहुत से संप्रदायों को एक व्यापक नाम मिलता है, हिंदू समाज और हिन्दू धर्म। ठीक इसी तरह से दक्षिण भारत में नंदिनागरी और उत्तर भारत में नागरी नाम से प्रचलित लिपि मुख्यतः संस्कृत अर्थात देववाणि के लिए प्रयुक्त होने के कारण देवनागरी कही जाने लगी।

संभवतः यह नाम 11वीं सदी से सार्वदेशिक लिपि के रूप में प्रचलित होने लगा। बाद में इस लिपि में ही हिन्दुस्थानी भाषा का व्याकरण, पत्र पत्रिकाएँ, संस्कृति के किताबें लिखने और छापने लगे। इस प्रकार मूलतः देववाणी संस्कृत के लिए देवनागरी लिपि का प्रयोग आज भारत की राजभाषा हिन्दी, मराठी, कोंकणी, सिंधी, डोगरी, बोडो और नेपाली के लिए भी किया जा रहा है।

7.7. बोध प्रश्न

1. प्राचीन लिपियाँ खरोष्टी और ब्राम्ही के बारे में लिखिए।

2. लिपि का विकास किस प्रकार हुआ चर्चा कीजिए।

3. देवनागरी लिपि की विशेषताएँ और वैज्ञानिकता पर छोटा सा निबंध लिखिए।

4. देवनागरी लिपि – सुधार पर चर्चा कीजिए।

7. 8. सहायक ग्रंथ

1. हिन्दी की बोलियाँ- जय राम, भाषा प्रकाशन, नई दिल्ली।

2. हिन्दी का भौगोलिक विस्तार-सुनंदा पाल, भाषा प्रकाशन, नई दिल्ली।

3. हिन्दी भाषा का विकास और बोलियाँ -ज्योति मिश्र।

डॉ. एम. मंजुला

404HN21

M.A (HINDI)

Paper – IV: HISTORY OF HINDI LANGUAGE

404HN21-हिन्दी भाषा का इतिहास

किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

सभी प्रश्नों के अंक समान है।

Time: 3Hours **Max:70 Marks**

1. संसार की भाषाओं की आकृति मूलक वर्गीकरण के बारे में चर्चा कीजिए।

(अथवा)

हिन्दी भाषा का उद्भव तथा विकास पर छोटा सा निबंध लिखिए।

2. भारतीय आर्य भाषाओं के बारे में लिखिए।

(अथवा)

देवनागरी लिपि की उद्भव तथा विकास के बारे में चर्चा कीजिए।

3. भारत की प्राचीन भाषाएँ संस्कृत, पाली, प्राकृत के उद्भव और विकास के बारे में लिखिए।

4. हिन्दी भाषा की बोलियाँ कितने है? सविस्तार चर्चा कीजिए।

(या)

हिन्दी सर्वनामों का विकास क्रम के बारे में बताइए।

5. किन्हीं दो पर टिप्पणियाँ लिखिए।

(a) अपभ्रंश भाषा

(b) खरोष्ठी लिपि

(c) कारक

(d) हिन्दी भाषा का स्वरूप

(या)

(a) ग्रियर्सन का वर्गीकरण

(b) देवनागरी लिपि की विशेषताएँ

(c) प्रशांत महासागरीय खण्ड

(d) ब्राह्मी लिपि